२४१
जीवनी
गुड़ियों के देश में
(जापान-यात्रा-संस्मरण)
■ प्रमोदचन्द्र शुक्ल

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, शिक्षा तथा युवक सेवा मंत्रालय, भारत सरकार के सहयोग से कार्यान्वित योजना के अंतर्गत प्रकाशित

मूल्य : पाँच रुपये सत्तर पैसे

लेखक : प्रमोदचन्द्र सुमन

पुनरीक्षक : जीवन नायक

प्रकाशक

2203, गली डकौतान,
तुर्कमान गेट, दिल्ली-6

प्रथम संस्करण : जनवरी, 1971

मुद्रक : हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
शिवाश्रम, क्वीन्स रोड, दिल्ली-6

सज्जा : तूलिका

आवरण मुद्रक : परमहंस प्रेस, दरियागंज, दिल्ली-6
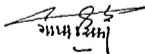
पुस्तक-बंध : खुराना बुक बाइंडिंग हाउस, दिल्ली

दो-शब्द

हिंदी के विकास और प्रसार के लिए शिक्षा तथा युवक सेवा मंत्रालय के तत्वावधान में पुस्तक प्रकाशन की विभिन्न योजनाएँ कार्यान्वित की जा रही हैं। केंद्रीय हिंदी निदेशालय प्रकाशकों के सहयोग से ज्ञान-विज्ञान और विविध विषयों की पुस्तकों का प्रणयन कर रहा है। इन पुस्तकों ने विषय संबंधी विविधता, रोचक लेखन-शैली और सामान्य कीमत के कारण हिंदी के पाठकों को अधिकाधिक आकर्षित किया है।

इस प्रकाशन योजना के अन्तर्गत प्रकाशित 'गुड़ियों के देश में' के लेखक ने सुबोध भाषा में अपनी जापान-यात्रा का रोचक वृत्त प्रस्तुत किया है। इन यात्रा-संस्मरणों से आधुनिक जापान के सांस्कृतिक तथा औद्योगिक जीवन का भी अच्छा परिचय प्राप्त होता है। अपने समापन वक्तव्य में लेखक ने भारत और जापान की परिस्थितियों की तुलना करते हुए इस बात की ओर संकेत किया है कि हम जापानियों के अनुभवों और उपलब्धियों से क्या कुछ सीख सकते हैं।

हमें विश्वास है कि यह पुस्तक लोकप्रिय होगी और हमारी योजना को अग्रसर करने में साधक सिद्ध होगी।

गोपाल शर्मा

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

(गोपाल शर्मा)
निदेशक

आमुख

साहित्य में यात्रा-वर्णनों का विशेष महत्त्व माना जाता है। गद्य की इस विधा के अन्तर्गत भारतीय साहित्य में अनेक सरस, सजीव रचनायें लिखी गई हैं और रचना-शिल्प के विविध-वर्ण प्रयोग भी इस विधा के अंतर्गत हुए हैं। यात्रा वर्णनों में स्वदेश छोड़कर बाहर जाने के फलस्वरूप लेखक के मन में उद्भूत भिन्नवर्णी भावनाओं की अभिव्यक्ति के साथ नवीन विदेशी भूखंड की विशेषताओं का सजीव वर्णन और वहाँ के प्राकृतिक, सामाजिक सौंदर्य का मनोरम चित्रण मिलता है। यात्रिक लेखक केवल भौगोलिक वैशिष्ट्य का चित्रोपम विवरण देकर ही नहीं रह जाता। वह अपने मन पर पड़े वहाँ के सांस्कृतिक प्रभावों को भी ऐसे कौशल के साथ स्पष्ट करता है कि उनका मर्मस्पर्शी स्वरूप पाठक के मन पर अंकित हो जाय।

जापान एशिया के अग्रणी देशों में है। वहाँ के निवासी केवल एशिया में नहीं, संसार के समस्त राष्ट्रों से आगे रहना चाहते हैं। प्रगति और भौतिक समृद्धि वहाँ के जीवन का मूल मंत्र है जो जापानियों को चरित्र-गठन और राष्ट्रोत्थान की प्रेरणा देता है। प्रकृति की विरोधी शक्तियों से निरन्तर जूझती रहने वाली जापानी जनता में संघर्ष और कष्ट-सहन की असाधारण क्षमता पाई जाती है। पर कला-परक संस्कारशीलता और सौन्दर्य-सृष्टि, ये दो भी जापानी स्वभाव और चरित्र के उतने ही बड़े गुण हैं। जीवन के प्रति गहरी सोद्देश्यता के साथ उनके दृष्टिकोण में सुषमान्वेषण और चित्रात्मकता भी परिलक्षित होती है।

'गुड़ियों के देश में' में लेखक के जापान-प्रवास के अनुभवों और अनुशीलनों का विस्तृत विवरण है जिसमें उसकी सहृदयता और परिष्कृत विचारणा का सुन्दर मेल मिलता है। रोचकता के साथ-साथ लेखक वर्ण्य-विषय के प्रति गहरी आत्मीयता भी स्थापित कर सका है। यथार्थ चित्रण की अपनी सधत शैली के द्वारा जापान के जन-जीवन और वहाँ के विभिन्न वर्गों की चारित्रिक विशिष्टताओं का निरूपण करने में वह सफल हुआ है। उसने पूर्वाग्रहहीन और खुली आँखों से इस शक्तिशाली, कर्मरत, विनाश की दैविक शक्तियों को निरन्तर पराजित करने वाले संघर्षशील राष्ट्र के वैयक्तिक और सामाजिक जीवन को देखने और समझने का सजग प्रयास किया है। पाठक के नेत्रों के सम्मुख जापानी जीवन के अनेक सच्चे दृश्य-खंड उभरते हैं और उसे रोचक आनन्द प्रदान करते हैं। वहाँ की सामाजिकता के विविध पक्षों को लेखक ने तटस्थ सच्चाई के साथ उद्घाटित किया है। भाषा में प्रवाह और वर्णनों में स्वाभाविकता है।

हिन्दी के यात्रा-साहित्य में इस पुस्तक के द्वारा अभिवृद्धि हुई है और लेखक साधुवाद के अधिकारी हैं। मुझे आशा है उनके द्वारा भविष्य में श्रेष्ठतर कृतियों की रचना होगी।

नई दिल्ली
८, सितम्बर १९७०

अपने जापान-प्रवास के दिनों में
विषाद और प्रसाद की संचारिणी
शान्ति और मीना
को

अनुक्रम

एशिया के आकाश में

दिल्ली से तोक्यो तक की दूरी आठ हजार दो सौ अठावन किलोमीटर है। आठ सौ किलोमीटर प्रति-घंटे की रफ्तार से उड़ते हुये जेट हवाई जहाज द्वारा इस फासले को 12 घंटों में तय किया जा सकता है। इसमें बैंकाक और हांगकांग में ठहरने के सवा-दो घंटे का समय भी शामिल है। दिल्ली और तोक्यो के समयों में साढ़े तीन घंटे का अंतर है। जब दिल्ली में शाम के 6 बजते हैं तो तोक्यो में रात्रि के साढ़े नौ। अतः दिल्ली और तोक्यो के अपने-अपने समयों के अनुसार 15 घंटे 30 मिनट में दोनों के बीच का सफर तय होता है। धुनी हुई रुई की तरह फैली हुई दूरी जेट जहाज़ों के सहारे समय की पोटली में सिमट कर बँध जाती है। विश्वास नहीं होता कि जितने समय में दिल्ली से तोक्यो पहुँचा जा सकता है, उससे कुछ अधिक समय में दिल्ली से इलाहाबाद तक 465 किलोमीटर का सफर रेलगाड़ी से पूरा किया जाता है। माना कि हाथी और हिरन की दौड़ में बराबरी नहीं की जा सकती। पर जापान में तो रेलगाड़ियाँ भी हवाई-सेवाओं से सफल होड़ करती हैं। तोक्यो और ओसाका के बीच बनी नई तोकादो लाइन पर 'हिकारी' नाम की रेलगाड़ी 210 किलोमीटर प्रति घंटा की गति से चलती है। लोग हवाई-जहाज़ पर चलने के बजाय इन सुविधा और सुरक्षा-पूर्ण रेलगाड़ियों पर सफर करना पसन्द करते हैं। उनकी गति भारत की सबसे तेज़ चलने वाली रेलगाड़ी की गति से प्रायः दोगुनी है।

जापान की राष्ट्रीय हवाई सेवा को 'जाल' की संज्ञा दी गई है। 'जाल' हवाई-सेवा संसार की सर्वोत्तम सेवाओं में गिनी जाती है। उसके यानों की साज-सज्जा, सफाई, परिचालक और परिचालिकाओं का विनम्र व्यवहार और सत्कार तथा खाने-पीने की व्यवस्था वास्तव में अविस्मरणीय है। 'एकानमी-कलास' में बैठने वालों की भी आव-भगत में कोई कमी नहीं होती। अंदर आते ही एक मोहक 'एयर-होस्टेस' झुक कर एक बैग भेंट करती है। उसमें एक जापानी पंखा जिस पर एक सुन्दर रेखा-चित्र होता है, भूमण्डल का नक्शा, जिस पर 'जाल' सेवा के मार्गादि निर्देशित होते हैं, खाने-पीने की विवरण-पुस्तिका और एक 'गाइड बुक' रहती है, जिसमें हवाई अड्डों में ठहरने और घूमने का ब्योरा दिया रहता है। जहाज़ के अन्दर सीटों के सामने की दीवार पर दो चित्र लगे थे।

मिलती है। गेरुए वस्त्रों में सजे साधुओं को देखकर भारत के बौद्ध भिक्षुओं या हिंदू साधुओं की याद आती है। नई पीढ़ी के लड़के और लड़कियाँ पश्चिमी लिबास में थे। बाइनाकुलर लिये हुए वे उन विशाल अमरीकी हवाई जहाज़ों को देख रहे थे जिनमें वायु-सेना और नौ-सेना के लोग चढ़-उतर रहे थे। लांज में कुछ दुकानें थीं, जिनमें रखी गुड़ियाएँ बड़ी ही आकर्षक थीं।

बैंकाक से ढाई घंटे की उड़ान के बाद हांगकांग की पहाड़ियाँ दूर से ही दिखाई पड़ने लगीं। ऐसा मालूम पड़ता था कि जैसे आकाश नीचे उतर आया हो और हम उसके ऊपर तैर रहे हों। हमारा जहाज़ नीचे उतरने लगा। समुद्र की उत्ताल लहरें ऐसी लग रही थीं जैसे किसी सुकेशिनी के घने बालों की माँग में उसके नन्हे बच्चे ने उँगली से रेखा खींचने की कोशिश की हो। हांगकांग की पहाड़ियों को पार कर हांगकांग नगर के चारों ओर हमारा वायुयान मँडराने लगा। कहीं ऊँचे-ऊँचे आलीशान मकान, कहीं टूटे-फूटे घर जिनके बाहर कपड़े सूख रहे थे। हवाई-अड्डा दो झीलों के बीच में है। जहाज़ से उतरने पर चीनी कर्मचारी आगे बढ़े। लांज में सब देशों के सिक्के बदले जा सकते हैं। चीज़ों के भाव पूछने पर पता चला कि यहाँ चीज़ें बहुत सस्ती हैं।

शाम की लाली और रात की कालिमा क्षितिज पर मिल रही थी। घड़ी को फिर दो घंटे बढ़ाया और हांगकांग के समय के अनुसार किया। ऊपर रंगीन आकाश और नीचे नीला समुद्र। चारों तरफ स्तब्धता। मन अशांत, पर अकारण।

हांगकांग और टोक्यो के बीच एक अमरीकी वृद्ध और वृद्धा मेरे पास आकर बैठ गए। हृष्ट-पुष्ट, सारे-गोरे लोग। बैठते ही तरह-तरह की शराबों के लिए आर्डर देना शुरू कर दिया। उनका कैलीफोर्निया में व्यापार है, देख-भाल उनका लड़का करता है। दुनिया देखने की चाह से—पिछले पन्द्रह दिनों से जापान, ताईवान-फिलीपाइन्स, हांगकांग आदि की सैर कर रहे हैं। वृद्धा ने बातचीत का सिलसिला शुरू किया, 'आप पाकिस्तानी हैं ?'

मैंने कहा—'नहीं, मैं भारतवासी हूँ।'

भारत का नाम सुनते ही फिर वही प्रश्न वही सुझाव—आपके देश में अकाल है, खाद्यान्न की कमी है। आप अपनी सेना क्यों नहीं संभालते। और फिर कुछ झिझक के साथ उसने पूछा—'क्या आप मुझे बतायेंगे कि हमारे देश से भेजे हुए अनाज का समुचित वितरण हो रहा है या नहीं ?'

उसकी बात सुन कर मन को ठेस लगी। पर सौजन्य का आवरण फाड़ना ठीक नहीं था। अपने देश की विशाल डार्कहेडो शासन में उसकी दरोबी, स्वतंत्रता के बाद की उपलब्धियों, भारतीय संस्कृति आदि के बारे में मैंने उसे बताया। वह नहीं समझा—उसके ऊपर क्या असर पड़ा। मगर जितने हमारी बहि-

भावों को समझने की कोशिश की है फिर कहा, "काश ! मैं हिन्दुस्तान जा सकती। मुझे वहाँ के रेशम के कपड़े खरीदने की बड़ी चाह है। क्या आप मुझे भेज सकेंगे ?"

खैर, यह बात और बातचीत, हवाई जहाज के दो स्टापों के बीच होकर गुम हो जाती है। समुद्र की सतह पर तैरते हुए लकड़ी के टुकड़े लहरों के प्रभाव से एक दूसरे से आकर मिल जाते हैं और फिर अलग होकर अपनी-अपनी धुन में बहने लगते हैं। ऐसा ही होता है परदेसियों का मिलन और बिछोह। लोग अपने अज्ञान और पूर्वाग्रहों की पोटली को बाँध कर घर से बाहर निकलते हैं। थोड़ा बहुत आदान-प्रदान करते हैं और फिर पोटलियों को समेट कर अपनी राह लगते हैं। मानव होने के नाते हम सब में कितना साम्य है। हमारी आकांक्षाओं, भावनाओं और विचारों में कितनी मौलिक एकता है। किन्तु देशों की दूरी और राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विभिन्नताओं के कारण हम एक-दूसरे से कितने दूर रहते हैं। इसका आभास मुझे तब मिलता था जब मैं हवाई जहाज में कुछ घंटों के लिए दूसरे देशों के लोगों से मिलता था। उनसे तादात्म्य स्थापित करता था और फिर एक मीठे सपने से जागकर हम लोग सदा के लिए एक-दूसरे से बिछुड़ जाते थे।

तीन घंटे हवाई जहाज में बैठने के बाद लोगों ने खिड़कियों से झाँकना शुरू कर दिया। दूर पर असंख्य दीप-मालाएँ चमकने लगीं। क्या इस देश में आज दीवाली है ? मुझे हरिद्वार में शाम के समय हर की पैड़ी पर बहुत से श्रद्धालु भक्तों का जल में दीप विसर्जित करने का दृश्य याद हो आया। गंगा के प्रवाह में बहते दीपों की कतारों की तरह इस समुद्र में सैकड़ों-हज़ारों दीपों की कतारें दिखाई दे रही हैं। थोड़ी देर बाद आँखों के सामने ज्योतिपुंज ही फूट पड़ा।

रंगीन और तेज़ प्रकाश की असंख्य पंक्तियों के बीच हवाई जहाज उड़ रहा था। नीचे सड़कों की रेखायें स्पष्ट होने लगीं। उन पर दौड़ती हुई कारों की लाल-बत्तियाँ लकीर खींचती-सी आगे बढ़ रही थीं। जहाज और नीचे आया और हनेदो हवाई अड्डे के चारों ओर मँडराने लगा। चारों ओर सफ़ेद और पीली बत्तियों का लावा बह रहा था। दिल्ली के पालम हवाई अड्डे की रोशनी उसके सामने ऐसी लगती जैसे जगमगाती अट्टालिकाओं के सामने टिमटिमाते दीपक के धुँधले उजाले में अर्ध-सुप्त झोंपड़ी।

लाउंज में पहुँचने पर देखा नोटिस-बोर्ड पर बड़े-बड़े अक्षरों में मेरे नाम का एक लिफाफा टँगा है। उसमें एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था, 'आपके स्वागत के लिये ट्रेवल-एजेंसी का एक प्रतिनिधि बाहर खड़ा आपका इंतज़ार कर रहा है।'

अपने कागज़-पत्र देखने के बाद मैंने सूटकेस उठाया। बीस किलोग्राम का

सूटकेस और बगल में बैग। अपने देश में तो अपने हाथ से सामान उठाना बुरा समझा जाता है। सोचा शायद कोई कुली मिल जाए। पर कोई दिखाई न पड़ा। ट्रैवल ऐजन्सी के प्रतिनिधि ने मेरे भार को बँटाने का आग्रह किया पर मैं यह कैसे मान लेता कि मैं अपने सामान का बोझ वहन नहीं कर सकता। सूटकेस और बैग दोनों को उठाकर आगे बढ़ा। ओफ, वे कितने भारी थे। टैक्सियों का ताँता था। पर जाने क्यों मेरे ट्रैवल एजेंट ने टैक्सी दूर कोने पर क्यों खड़ी की थी। कचूमर निकला जा रहा था। झुँझलाया। पर देश की इज्जत का सवाल था। मन-ही-मन देवी-देवताओं को मनाने लगा कि वे अपनी अपार शक्ति से सूटकेस का भार हलका कर दें ताकि वह मेरे हाथ से छूट न गिरे और जापान में आते ही भारत के लोगों की खिल्ली न उड़ने लगे। यदि ऐसा हुआ तो यह बुरा श्रीगणेश होगा। हनुमान चालीसा की चौपाइयों का पाठ बरबस होने लगा। खैर, किसी तरह हिलते, डुलते, डगमगाते टैक्सी तक पहुँचा। टैक्सी में बैठने पर अपने काम के लिये दूसरों पर आश्रित रहने की आदत पर खीझ रहा था।

तोक्यो की सड़कों पर काफी तेज नीला-पीला और सफेद प्रकाश रहता है। दिल्ली जैसा धुँधलापन वहाँ देखने को नहीं मिलता। सड़क के किनारों पर जापानी अक्षरों में रंग-बिरंगे विज्ञापन, जिनकी रोशनी क्षण-क्षण में बदलती रहती है। टैक्सी भी रंग-बिरंगी और सीटें बहुत ही आरामदेह। अंदर रेडियो लगा था, जिसमें पश्चिमी गाने की धुन बज रही थी। टैक्सी काफी तेज रफ्तार से जा रही थी। एक के ऊपर एक सड़क और उनके चढ़ाव देखते ही बनते थे।

होटल में पहुँचते-पहुँचते रात्रि का एक बज गया। वहाँ के लाउंज पर भी 10-12 लड़के-लड़कियाँ खड़े बातें कर रहे थे और बीच-बीच में कहकहे लगा रहे थे। इनमें कुछ अमरीकी, कुछ यूरोपी, और कुछ एशिया के अन्य देशों के लड़के-लड़कियाँ थे। लंबे सफर के बाद मन और शरीर दोनों थक चुके थे। इसलिये मुझे अपने कमरे में जाने की जल्दी थी। छठी मंजिल पर स्थित कमरे को खोला। देहरी के बाद तीन फुट लंबी और दो फुट चौड़ी जगह थी जहाँ चार स्लीपर रखे थे। छः इंच नीचे फर्श था। मैंने जूते उतारकर स्लीपर पहन लिये। फर्श पर शीतल-पट्टी की तरह बिछौना बिछा हुआ था। एक पलंग था और पास में सामान रखने के लिये अलमारी। कमरे की दीवारों पर प्लास्तर नहीं था। पास जाकर देखा तो भूरे रंग का टाट खिंचा हुआ था। छत पर भी मोटा कपड़ा तना था। दीवारें लकड़ी की थीं।

रात्रि के दो बज चुके थे, फिर भी उमस और गर्मी। नहाये बिना सोना कठिन था। स्नानघर की ओर गया तो उसे अंदर से बंद पाया। बाहर एक अमरीकी लड़की खड़ी थी। बाथरूम में गई अपनी साथिन के निकलने का इंतजार कर रही थी। समय काटने के लिए मैंने उस लड़की से बातचीत शुरू की। उसने

बताया कि जापानी भाषा और संस्कृति का अध्ययन करने के लिये वह करीब एक साल से आई है। यहां आठ बजे से शाम के पांच बजे तक पढ़ाई, उसके बाद शाम को किसी मित्र-संबंधी के साथ बाहर जाने का प्रोग्राम बन जाता है। होस्टल में वापस आने तक काफी देर हो जाती है। अच्छी तरह नहाने-धोने का समय तभी मिलता है।

मेरे पूछने पर कि वह इस होटल में क्यों रहती है—उसने बताया कि वास्तव में यह होटल नहीं, एक युवक-आवास है। जापान में प्रायः सभी बड़े नगरों में इस तरह के 500 आवास हैं। विदेशों से शिक्षा और ज्ञान के लिये आये विद्यार्थियों के ठहरने का प्रबंध इनमें रहता है। कमरों का किराया और खाने का सामान बाज़ार-दर से सस्ता होता है। इन आवासों को नगर-पालिकाओं या राष्ट्रीय सरकार की ओर से आर्थिक सहायता मिलती है। इस तरह युवक-आवास विदेशी-विद्यार्थियों के रहने-सहने, मिलने और विचारों के आदान-प्रदान के सुलभ केन्द्र बन गये हैं।

मेरी आँखों के सामने भारतीय लड़कियों की शर्मीली-संकोची मूर्ति छा गई। हमारे यहाँ की अधिकांश लड़कियाँ शाम होते ही घर से बाहर निकलने में हिच-किचाती हैं। उनमें से कितनी अपने देश से हज़ारों मील दूर अजान और नये वातावरण में इस निर्भीकता और स्वच्छंदता से विचरण कर सकती हैं?

लगभग 40 मिनट तक प्रतीक्षा करने के बाद स्नानघर में से दूसरी लड़की निकली। मैंने भुककर उसे अभिवादन किया और अंदर चला गया। स्नानघर के फ़र्श पर लकड़ी का एक लंबा चौड़ा पट्टा पड़ा हुआ था। उस पर कपड़े उता-रने की व्यवस्था थी। उसके पास पत्थर का एक ताख था। उस पर प्लास्टिक की एक टोकरी थी। जापान में कपड़े उतार कर खूँटियों पर टाँगने के बजाय उन्हें टोकरियों में रख दिया जाता है। उस पट्टे को लाँघ कर नीचे की ओर नहाने का कमरा था। वहाँ एक बड़ा टब रखा हुआ था। उस पर फ़व्वारा लगा था। दूसरी ओर गर्म और ठण्ड पानी के नल लगे थे। इच्छानुसार तापमान का पानी बनाने के लिये उन्हें खोल दिया जाता है और फिर उसमें स्नान किया जाता है।

मैं पाँच-दस मिनट में नहाकर बाहर आ गया। अत्यधिक गर्मी थी। मैंने कमरे की खिड़की खोल दी। चारपाई पर पड़ा-पड़ा देर तक जागता रहा। बहुत-सी अस्पष्ट भावनाओं का उतार-चढ़ाव, कोलाहल, प्रियजनों की याद तथा नये देश और वहाँ के लोगों के प्रति अशांत कुतूहल उमड़ता रहा। ऊहापोह में देर तक नींद न आई। पर जब सो गया तो काफी देर तक सोता रहा। सूर्य की गर्म किरणें जब खिड़की पर पड़ने लगीं—तब भी सोता रहा।

तोक्यो

•

सूर्य की किरणों ने मुझे जगाया। पर केवल चार-साढ़े चार घंटे की कच्ची नींद से पिछले दिन की शरीर और मन की थकावट दूर नहीं हो सकी। मैं काफी देर तक लेटा रहा। बहुत से अस्पष्ट विचारों के ततु उठते और टूट जाते थे। लेटे-लेटे खिड़की के पर्दे को जैसे ही हटाया तो सामने ऊँची दीवार पर लगी गोलाकार घड़ी की मिनटों की सुई को झटके के साथ एक से दूसरे मिनट पर लाँघते देखा। समय अपनी अविरल गति से बहा जा रहा है। नये लोक में, अपनी जानी-पहचानी धरती और लोगों से हज़ारों कोस दूर, पृथ्वी और आकाश के बीच त्रिशंकु-से तोक्यो की उस ऊँची इमारत की छठी मंजिल के एक कमरे में अकेला और अनजान, एक मीठा-सा दर्द लिए लेटा था। अनजाने लोगों के बीच, अनदेखी जगहों पर जाने की संभावनाओं से शरीर में एक हल्की-सी गुदगुदी उठ रही थी। कमरे के बाहर पद-चाप स्पष्ट सुनाई पड़ रही थी। आसपास के दरवाज़ों के खुलने या बंद होने की आवाज़ भी आ रही थी। देखते-देखते घड़ी की सुई ने एक घंटे का सफर तय कर लिया। मैं उठा और खिड़की के बाहर झाँकने लगा। नीचे लंबी-चौड़ी चौपड-सी बिछी सड़कों पर नीली-पीली और सुर्ख हरे रंग की कारों का ताँता लग रहा था। हर कार तिरंगी, हर एक पर गोलाकार निशान, तेज रफ़्तार और सहसा ब्रेक लगने की चीख़। उनकी तड़क-भड़क के सामने दिल्ली की काले और पीले रंग की टैक्सियाँ फीकी लगती हैं। बसें मेरे कमरे के ठीक नीचे बने बस-स्टैण्ड पर आकर रुक रही थी। वहाँ खड़े छोटे कद के आदमियों, औरतों और फुदकते बच्चों को लेकर आगे बढ़ जाती थीं। बस-स्टैण्ड के पास काली पतलून और सफेद बनियान पहने, मुँह में सिग्रेट दबाये एक लड़का झाड़ू लगा रहा था। उसकी पोशाक, हाव-भाव या कपड़ों से यह अनुमान लगाना कठिन था कि वह झाड़ू लगाने का काम करता है। उसे देखकर मुझे अपनी कोठी में झाड़ू लगाने वाले एक भंगी लड़के की याद आ गई। 17-18 साल का भरे बदन और सुंदर चेहरे का वह लड़का, सिर के बालों की पट्टियों को बहुत सँवार कर आता था। बड़ी सुरीली आवाज़ में दर्द भरे फ़िल्मी गाने गाता था। उसकी पुरानी खाकी पतलून में कई टाँके लगे रहते थे। रंगीन बुश-शर्ट भी फटी रहती थी। उसके इस बनाव-सिंगार और मस्ती के प्रति हमारे

सहारे बिना, व्यापार और विज्ञान की पेचीदगियों को सुलझाना सुलभ समझते हैं। मेरी यह गलतफहमी तोक्यो पहुँचते ही दूर हो गई। लंबी साधना के बाद प्राप्त अँग्रेजी के ज्ञान की कुँजी को जापानी जन-मानस के तालों को खोलने में विफल पाया। अँग्रेजी का ज्ञान होते हुए भी मैं असहाय, बेबस और निरालंब था।

काफी देर बाद एक टैक्सी ड्राइवर ने 'मित्सुबिशी बैंक' का अर्थ समझ कर मुझे टैक्सी में बिठा लिया। टैक्सी चार, छह और आठ गलियों की चौड़ी सड़कों के उतार-चढ़ावों पर तेज़ी से दौड़ रही थी। सड़कों के दोनों ओर कई-कई मंज़िलों की ऊँची-ऊँची इमारतें थीं। ऊपर की मंज़िलों में बिजली की बत्तियाँ जल रही थीं। ज़मीन की मंज़िल पर शीशे के लंबे-चौड़े बंद दरवाज़े थे। दीवारों पर जापानी भाषा के कलात्मक अक्षर, जो बहुत कुछ शार्टहैंड के अक्षरों से मिलते-जुलते हैं—दिखाई पड़े। शायद ही किसी जगह अँग्रेजी के अक्षर देखने को मिले हों। अपनी कार के रेडियो को खोले हुए टैक्सी ड्राइवर आगे बढ़ा जा रहा था। उससे बातचीत करना सम्भव नहीं था, क्योंकि हम दोनों एक दूसरे की भाषा से अनभिज्ञ थे। करीब आधा घंटा चलने के बाद उसने एक बहुत बड़ी बिल्डिंग के सामने टैक्सी को रोक दिया। मैंने उसे हाथ के इशारे से वहीं पर रुके रहने को कहा क्योंकि मेरे पास उसे देने के लिये जापानी नोट नहीं थे। आदमी भला था, मेरी बात पूर्ण रूप से समझा या नहीं, किंतु उसने 'हाई-हाई' कहकर अपने सामने का बटन दबाया, जिससे मेरे बाएँ हाथ का दरवाज़ा अपने आप खुल गया। बैंक के सामने शीशे के बड़े-बड़े दरवाज़े थे। मैं जब उनके पास पहुँचा तो उनमें से एक स्वतः ही एक ओर को फिसलने लगा, इस तरह मेरे अन्दर जाने के लिये प्रवेश-द्वार बन गया। थोड़ी दूर आगे बढ़कर जब मैंने मुड़कर देखा तो दरवाज़ा फिर अपनी जगह जाकर बंद हो चुका था।

बैंक से स्टर्लिंग पाउंड को येन के नोटों में बदलकर बाहर आया और टैक्सी पर बैठकर गिनज़ा पहुँचा। मीटर पर आई राशि के अनुसार उसने मुद्रा ले ली। फिर उसने दो बार सिर झुकाकर 'थैंक्यू' की और मैं टैक्सी से बाहर उतर आया।

गिनज़ा तोक्यो का सबसे समृद्ध और विख्यात बाज़ार है। एक विशाल राज-पथ के दोनों ओर छोटी-छोटी दुकानें और बड़े-बड़े डिपार्टमेंट स्टोरों की सघन सुसज्जित शृंखला। यहाँ की ऊँची-ऊँची इमारतें ऐसी हैं मानों किसी पहाड़ के सामने के भाग को सीधा काटकर उसमें सैकड़ों छोटी-छोटी खिड़कियाँ जड़ दी गई हों। दिन के दस बजे से खरीदारों, विद्यार्थियों और सुंदर लड़कियों का ताँता लगना आरंभ हो जाता है। तीन-चार बजे शाम को किमोनो में सजी गृहिणियाँ दुकानों की सैर करतीं और रेस्तराँ में बैठी गप्प मारती दिखाई देती हैं। फिर शाम के

घंटे बजते ही स्कूलों और कालिजों के लड़के-लड़कियाँ और दफ्तरों के बाबू टिड्डी-दल की तरह गिनजा में छा जाते हैं। दूकानों में सजे सामान को सराहते, खाते-पीते और एक दूसरे से मिलते-जुलते हजारों नर-नारियों की भीड़ चारों तरफ दिखाई पड़ती है। रात होने ही यहाँ की चटकीली-भड़कीली नियोन की रंगीन बत्तियाँ और रहस्यमय जापानी अक्षरों को जगमगाती बिजली की रोशनियाँ गिनजा को एक मोहक मनोरम स्थान बना देती हैं।

गिनजा के मुख्य मार्ग से कुछ दूर पश्चिम की ओर हट कर एक समानांतर सड़क है। इसे निशीगिंजा कहते हैं। इसके आठ भाग हैं। प्रत्येक भाग में सैकड़ों दूकानें, मयखाने और रेस्तरां हैं। कहते हैं, यहीं पर तंग जगह की गागर में रंगीनियों के उफनते सागर हैं।

तोक्यो की आबादी लगभग एक करोड़ दस लाख है। यह आबादी पूरे जापान की आबादी का दसवाँ भाग है। आबादी की दृष्टि से तोक्यो संसार का सबसे बड़ा नगर है। इस एक करोड़ दस लाख आबादी में से लगभग 30 लाख लोग तोक्यो के उप-नगरों में रहते हैं जो काम करने के लिये नगर में आते हैं और रात को अपने घर वापस चले जाते हैं। इन लोगों की सुरक्षा के लिये तोक्यो स्टेशन को केन्द्र मानकर 50 किलोमीटर के दायरे में एक दुहरी गोल लाइन बनाई गई है। यह पूरी की पूरी लाइन जमीन से ऊपर है। इसलिये 'लेविल-क्रासिंग' जैसी कठिनाइयाँ यहाँ पैदा नहीं होती। इस वृत्ताकार लाइन को चाऊ-लाइन कहते हैं। इसमें व्यास बनाती हुई एक और लाइन है जो यामाते-लाइन कहलाती है। इन लाइनों से तोक्यो के सभी भूमिगत् स्टेशनों पर पहुँचा जा सकता है। तोक्यो की 50 प्रतिशत शहरी सवारियाँ इन रेलगाड़ियों का प्रयोग करती हैं। वहाँ की 27 प्रतिशत सवारियाँ भूमिगत् रेल-गाड़ियों का प्रयोग करती हैं।

इस समय तोक्यो में 75 किलोमीटर लंबी, जमीन के अंदर चलने वाली सुंदर रेलगाड़ियाँ हैं। जगह-जगह पर सड़कों के किनारे की पटरियों पर नीचे जाती हुई सीढ़ियाँ दिखाई देंगी। इनसे उतरकर जमीन के अंदर चलने वाली रेल-गाड़ियों पर पहुँचा जा सकता है। उनका जाल फैलाने के लिये एक बड़ी योजना बनाई गई है। आशा की जाती है कि 1970 तक भूमिगत रेलगाड़ियाँ तोक्यो के सभी स्थानों पर लोगों को ले जा सकेंगी। तब तोक्यो के 80 प्रतिशत मुसाफ़िर इन गाड़ियों पर सफर कर सकेंगे। इन गाड़ियों की रफ्तार 40 मील प्रति घंटा होती है। वे अपने निश्चित स्थान पर आकर अपने-आप रुक जाती हैं। उनके दरवाजे भी अपने आप खिसककर बंद हो जाते हैं। जब तक दरवाजा बंद नहीं होगा, रेलगाड़ी नहीं चलेगी।

तोक्यो में सड़कों पर सड़कें, रेल-पथ पर सड़कें और उसके नीचे सड़कें कुछ

ऐसे चक्करदार रास्ते हैं, जो वास्तव में कौतूहल जगाते हैं और विस्मय बढ़ाते है। जब जमीन के अंदर चलने वाली रेल-गाड़ियों का विस्तार योजना के अनुसार हो जाएगा तो यह सुविधा हो जायेगी कि जमीन के अंदर जाने के लिये मुसाफिरों को गाड़ियाँ बदलनी नहीं पड़ेंगी। एक ही रेलगाड़ी में बैठकर जमीन के अंदर से तोक्यो के प्रायः सभी स्थानो पर आसानी से पहुँचा जा सकेगा।

जमीन के ऊपर और नीचे चलने वाली रेलों के प्लेटफार्मों पर सदा भीड़-भाड़ रहती है। इन प्लेटफार्मों पर हर दो मिनट में ट्रेन आती रहती है। कहीं-कहीं तो एक ही दिशा में दो-दो ट्रेनें साथ-साथ चलती हैं। इनमें से एक गाड़ी एक या डेढ मील के बाद हर एक स्टेशन पर रुकती है तो दूसरी तीन-तीन चार-चार स्टेशनों को पार करती निकल जाती है। पहचानने की सुविधा के लिये इन गाड़ियों को अलग-अलग रगों से रंग दिया गया है। इनकी समय की पाबंदी संसार भर में अनोखी है। आप अपनी घड़ी का टाइम उनके समय से ठीक कर सकते हैं। इन गाड़ियों में सफर करने वाले मुसाफिर मिनटो में अपने गंतव्य पर पहुँच जाते हैं। शाम को पाँच बजे से सात बजे तक इतनी अधिक भीड़ होती है कि इन गाड़ियों की अविराम शृंखला भी उसे कम करने में असफल रहती है। स्टेशन पर गाड़ी रुकने पर, प्लेटफार्म पर खड़ी भीड़ पहले गाड़ी से उतरने वालों के लिये जगह बना लेगी। सब लोगों के उतर जाने के बाद ही अन्य यात्री गाड़ी में चढ़ेंगे। कुछ ही क्षणों में गाड़ी में इतने अधिक लोग चढ़ जाते हैं कि कहीं तिल-भर भी जगह नहीं रहती। ऐसा होने पर भी मैंने कहीं किसी को जोर से बोलते, कहा-सुनी, झगड़ा-फसाद या चीख-पुकार करते नहीं सुना। भीड़ का रेला आये तो भी उसे उदासीन भाव से सह लेंगे। किसी के पैरों से कुचलने पर चीख नहीं निकलेगी। चारों ओर से घिसने के कारण कोई धक्का-मुक्की नहीं होगी। सभी स्त्री-पुरुष सिमट कर शांत भाव से थोड़े से ही स्थान में खड़े हो जाते हैं। जैसे ही गाड़ी चलने लगेगी गाड़ी की छत से लटके चमड़े के बधों को पकड़ लेंगे, ताकि अपने स्थान पर स्थिर रह सकें। बहुत से लोग अपनी पुस्तक या पत्र-पत्रिका निकालकर पढ़ने लगेंगे। मैंने तो कई बार इस भीड़ के बीच मे लड़के-लड़कियों को कोश खोलकर शब्दों के अर्थ दुहराते देखा है।

तोक्यो की सड़कों पर असंख्य और अनंत मोटर कारें दिखाई पड़ती हैं। यातायात में कोई रुकावट न पड़े इसलिये वहाँ एक के ऊपर एक, तीन-चार और पाँच सड़कें बनाई गई हैं। इन सड़कों पर मोटर-गाड़ियों की रफ्तार अलग-अलग होती है। जिस सड़क पर सबसे तेज गाड़ियाँ चलती हैं उसे एक्सप्रेस-वे कहते हैं। एक्सप्रेस-वे पर जाने के लिये हर कार को एक बार मे छह रुपये देने होते हैं। यदि कोई कार छोटी हो तो उसको तीन रुपये देने पड़ते हैं। जिन क्षेत्रों में आबादी अधिक है, वहाँ सड़कें छह-छह, सात-सात मील लंबी सुरंगों में से गुजरती हैं—

इन सुरंगों में यातायात का नियंत्रण करने के लिये टेलीविज़न लगे हैं। सेंट्रल कंट्रोल-रूम में प्रत्येक गाड़ी की स्थिति का टेलीविज़न द्वारा पता चलता रहता है। सुरंग में किसी गाड़ी के खराब होते ही टेलीविज़न द्वारा तुरंत पता लग जाता है और उसे बाहर निकालने के लिये तत्काल मदद भेज दी जाती है।

तोक्यो में इक-मंज़िली बसें ही चलती हैं पर दिल्ली में चलने वाली बसों से अधिक चौड़ी होती हैं। इनमें सीटें बस की लंबाई के समानांतर होती हैं। बीच में खड़े होने के लिये काफ़ी जगह बची रहती है। इस तरह एक बस में हमारे यहाँ से अधिक यात्री आ जाते हैं। सुबह-शाम यहाँ भी बसों में काफ़ी भीड़ होती है। इन बसों के दरवाज़े कंडक्टर के स्विच दबाने से खुलते और बंद होते हैं। ये बसें तब तक नहीं चल सकती, जब तक दरवाज़े बंद नहीं हो जाते। अतः पायदानों पर यात्रा करने का सवाल ही नहीं उठता। बहुत-सी बसों में एक टेपरेकार्डर लगा होता है। जब बस किसी निश्चित स्थान पर पहुँचने को होती है तो उससे पहले ही वह चालू होकर बतलाता है कि अब हमारी बस अमुक स्थान पर पहुँच रही है, यदि आप अमुक-अमुक स्थान को जाना चाहें तो आपको यहाँ से इस-इस नंबर की बसें मिलेंगी। जैसे ही टेपरिकार्ड समाप्त होता है, गाड़ी रुक जाती है और उसके दरवाज़े अपने आप खुल जाते हैं। बस-स्टाप के पास एक छोटा-सा सफ़ेद बोर्ड लगा रहता है। उस पर जापानी अक्षरों में कुछ लिखा रहता है। साथ ही रोमन गिनती में रूट का नंबर और बस का समय लिखा रहता है। यह अच्छी सुविधा है, किंतु विभिन्न रूटों के गंतव्य और उन रास्तों को जाने बग़ैर उन नंबरों से कोई विशेष सहायता नहीं मिल पाती। लोगों से पूछने पर भाषा की कठिनाई खड़ी हो जाती है। शायद ही कोई ठीक तरह से बता पाता है कि कौन-सा रूट किधर जाता है। जब किसी जापानी को कोई बात समझ में नहीं आती तो वह आस-पास खड़े किसी दूसरे से उसके बारे में पूछता है। अगर उससे भी ठीक उत्तर नहीं मिला तो किसी तीसरे से पूछेगा। वे आपके बारे में इतनी दिलचस्पी लेंगे कि आप इस बीच किसी दूसरे से अपनी जिज्ञासा प्रगट नहीं कर सकते। आप खड़े रहिये, बातों का क्रम चलता रहेगा। बात समझने में भी शायद उन्हें देर लगे और फिर इस लंबी बातचीत के बाद वह आपको जो कुछ बतायेगा वह यदि आपकी ज़रूरत को पूरा करने के लिये पर्याप्त न हो तो उसका क्या क़ुसूर ? उस बिचारे ने तो पूरी-पूरी कोशिश की !

सड़कों के बीच में कहीं-कहीं ट्राम की पटरियाँ हैं। जिन पर कभी-कभी ट्रामें इधर से उधर आती-जाती हैं। ट्रामों पर बैठकर कहीं भी जाने का किराया बराबर ही लगता है, पर उनकी गति धीमी होती है। अतः अधिकतर लोग बसों पर ही सफ़र करते हैं।

दिल्ली की भाँति जापान में भी बसों के किराये में विद्यार्थियों को रियायत

दी जाती है। यहाँ इनमे केवल सात प्रतिशत किराया लिया जाता है। मैंने यहाँ के एक अधिकारी से कहा—'आप यह किराया बढ़ा क्यों नही देते; विद्यार्थियो को इतनी रियायत क्यो देते है। इससे तो आपके विभाग को काफी हानि होती होगी।' इस पर उसका उत्तर था—'विद्यार्थी तो हमारे देश के भविष्य हैं, हम उनके साथ ऐसा कैसे कर सकते हैं?'

तोक्यो में परदेसियों का मार्ग-दर्शन करना वास्तव में दुरूह काम है, क्योंकि वहाँ अधिकतर सड़कों के नाम या नम्बर नही हैं। मकानो के नम्बर भी निहायत बेतरतीब हैं। अगर एक मकान का नम्बर 24 है तो उसके पास का 480 भी हो सकता है। इसका कारण यह है कि मकान के नंबर उसके बनने के समय के अनुसार दिये गये हैं। पुराने मकानों के छोटे नंबर हैं और नये मकानों के बड़े। शुभ और भाग्यशाली नम्बर के बारे में जापानी काफी ध्यान रखते हैं। इसलिये कभी-कभी म्युनिसिपल अधिकारियो से मिलकर अपने मकानो का शुभ नंबर लगवाते हैं। मकान ढूँढ़ने मे जो कठिनाई होती है उसे दूर करने का केवल एक ही रास्ता है और वह है, चौराहों के किनारे स्थित 'इन' या चौकियो में जाना। थोड़ी-थोडी दूर पर स्थित इन पुलिस चौकियो पर एक या दो पुलिस कर्मचारी हमेशा रहते हैं। इनमे अक्सर एक ही कमरा होता है। इसकी दीवार पर मोहल्ले का बहुत बड़ा नक्शा टँगा होता है, जिसमें मकान का नंबर और उसमें रहने वाले का नाम लिखा रहता है। प्रायः पुलिस अधिकारी थोडी बहुत अड़चन के साथ अंग्रेज़ी भाषा समझ लेते हैं। कम-से-कम उतनी जितनी आपके मार्ग-दर्शन के काम आ सके। अधिकतर जापानी मिलने पर एक कार्ड देते हैं। इस कार्ड के पीछे उसके मकान का नक्शा रहता है। आप उस कार्ड को पुलिस के कमरे में दिखा दीजिये। इससे आपको गंतव्य स्थान तक पहुँचने मे काफ़ी सुविधा होगी।

तोक्यो की बनावट वृत्ताकार है। उसके केन्द्र मे राजमहल है, जहाँ मे पहिये की अराओं की तरह सड़कें किनारे की उप-नगरियों—शिनागावा, शिनजूकू, शिबूया, कीनो आदि से जोड़ती हैं। यह महल तोक्यो की घनी बस्तियों के बीच में सौ-एकड़ खुला स्थान है। यह संसार के राजप्रासादों में सर्वथा भिन्न है। इसकी बनावट में एक अजीब सादगी और संयम है। भूरे-नीले पत्थरो से बनी इसकी चारदीवारी के चारो ओर एक खाई है, जिसमे रंगबिरंगी मछलियाँ और बत्तखों के जोड़े तैरते है। इसके बाहर फैले हुये लॉन हैं। इन पर देवदार के बौने वृक्षों को बाँस के वितानों पर तारों से बाँधकर अनोखी आकृतियों मे बढ़ाया जाता है। अपनी झुकी शाखों के कारण दूर से देखने पर ये बड़े आकर्षक लगते हैं। महल तक पहुँचने के लिये कई पुल बने हैं। इनमें 'निहोनबाशी' सबसे प्रसिद्ध है। तोकुगावा राजपालों की राजसत्ता के संस्थापक तोकुगावा इयेयासु ने इस पुल को 1603 ई० में बनवाया था। तब से यह तेरह बार बन-बिगड़ चुका है। इसी के

भाग मे पोखरों और उद्यान की सभी सुविधा बनाई गई है। चारदीवारी के कोनों पर मीनारें हैं। इनकी तिरछी छतें किश्ती जैसी हैं। चारदीवारी के अंदर कई आवासगृह हैं, जिनमें जापान के सम्राट और उनके परिवार के लोग रहते हैं। प्रासाद के अंदर जाना वर्जित है। केवल पहली जनवरी और सम्राट के जन्म-दिन पर जनता को राज प्रासाद के भीतरी आंगन तक जाने दिया जाता है। राज-प्रासाद के सामने एक ओर जापानी सरकार के मंत्रालयों की बहु-मंजिली इमारतें हैं। इनसे कुछ आगे जापान की पार्लियामेंट (डायट) का मुख्य भवन है। दूसरी ओर ऊँची-ऊँची आधुनिक अट्टालिकाएं हैं। इनमें जापान के बड़े व्यवसायों और उद्योगों के मुख्य दफ्तर हैं।

तोक्यो नहरों और पुलों पर बना है। यहां 6521 पुल हैं। उनके किनारे पर स्थित संकरी गलियों की भूलभुलैयों में अनजान जापानी भी भटक जाते हैं। यहां 215 पार्क हैं। इनमें से सबसे रोचक और विस्तृत पार्क सम्राट मेजी की समाधि के चारों ओर फैला है। सम्राट मेजी का राज्यकाल सन् 1852 से 1912 तक रहा। इनके शासन-काल में जापान आधुनिकता का चोला धारण कर प्रगति के पथ पर बढ़ा। ये जापान में राष्ट्रपिता माने जाते हैं। इनकी समाधि राष्ट्रीय तीर्थ-स्थान है। इसके चारों ओर एक विशाल वन है जिसमें तालाब, उद्यान, रेतों के मैदान और सुरम्य पेड़ों की शीतल छांह मिलती है।

तोक्यो का सबसे बड़ा आकर्षण यहां के राज-प्रासाद, ऊँची अट्टालिकाएँ, धनी-बस्तियां या सुन्दर-पार्क नहीं वरन् यह अनन्त जन-समूह है जो सब दिन, सब समय यहां की सड़कों, दूकानों, पार्कों और आमोद-स्थलों में दिखाई पड़ता है। यहां की स्त्रियों और पुरुषों के चेहरों और विचारों में अजीब एकरूपता मिलती है। प्रायः पुरुष गहरे रंग की पैंट और सफेद कमीज पहने हुए मिलेंगे। यदि कोट हुआ तो पतलून के रंग का होगा, बूट या स्लीपर काले रंग के होंगे। अधिकतर स्त्रियां स्कर्ट और ब्लाउज पहनती हैं जो या तो एक ही कपड़े का बना होता है या उनके रंगों मे पूर्ण रूप से भिन्नता होती है। उनके प्लास्टिक के मोजे पूरी जांघों तक होते हैं जिनमें से उनकी स्वाभाविक त्वचा का रंग बिल्कुल साफ दिखाई देता है और यह भ्रम होता है कि उनकी टांगें और जांघें नंगी हैं। पैरों में ऊँची एड़ी के जूते। यदि वे किमोनो पहिने हुई तो पैरों में सफेद ताबी या मोज़े होंगे, जिनमें अँगूठों और अन्य अँगुलियों के बीच दरार होती है, ताकि ऊँची एड़ी के सैंडल का तस्मा डाला जा सके। इनमें से कुछ पीठ पर अपने बच्चों को बांधे कुबड़ी-सी दिखाई देती हैं।

मुख-मुद्रा शांत और भावहीन, पर पहिनावे और चाल-ढाल में चुस्ती। हर तीसरे पुरुष की आँखों पर चश्मा। अधिकतर स्त्रियों की आँखें छोटी, वक्र और सिमटी हुई-सी। प्रायः सभी के हाथों में फुरोशकी, एक तरह का बस्ता जिसमें

लोग अपना खाने का सामान, किताबें या खरीदी हुई चीजें ले जाते हैं।

हर क्षण जन-समुदाय उत्ताल तरंगों-सा आगे बढ़ता रहता है। कुछ लोग दूकानों के बाहर, शीशे की अलमारियों में सजी चीजों को मुग्ध होकर देखते रहते हैं। कुछ दूकानों के अंदर जाकर सामान को छूकर सराहते हैं। कुछ अपने चारों ओर के दृश्यों से बे-खबर किसी अज्ञात धुन में रमे भीड़ के प्रवाह में बहते निरुद्देश्य आगे बढ़ते जाते हैं। कभी-कभी सड़क के ठीक बीचोंबीच दो जाने-पहिचाने लोग एक-दूसरे को देखकर सिर और शरीर को झुका और फिर उठा-कर एक-दूसरे से अभिवादन करते हुए रास्ता रोक कर खड़े हो जाते हैं। इस समय इन्हें यह चिन्ता नहीं कि इनके रुकने से भीड़ के बढ़ने में रुकावट पैदा हो गई है। जैसे योगी वासना के प्रवाह में निश्चिन्त और अटल रहता है, वैसे ही ये लोग परंपरागत शिष्टता को निभाने के लिए लोगों के आने-जाने के प्रति निश्चिन्त हुए खड़े रहते हैं। भीड़ भी इनकी शिष्टता का आदर करती हुई, कतरा कर आगे बढ़ जाती है।

दूकानों की क़तारें सजी हैं। सड़कों की भीड़ की तरह सामान ठसा पड़ा है। ट्रांजिस्टरों, कैमरों, घड़ियों, नायलान, रेशम और सूती कपड़ों के थान या बनी हुई पोशाकों, मोतियों, शृंगार प्रसाधनों से भरी दूकानें और हर पाँचवी या छठी दूकान के बाद खाने-पीने की दूकान। खाने की दूकानों पर शीशों के पीछे तश्त-रियों में सजे अनेक प्रकार के पकवान। भ्रम होता है कि ये पकवान रसोई से लाकर प्लेटों में रख दिये गये हैं। किन्तु वास्तव में ये प्लास्टिक की बनी हुई चीजें हैं। इनका रूप, रंग और सज्जा इतनी स्वाभाविक है कि देख कर यह अनुमान लगाना कठिन है कि ये खाने के नहीं दिखाने भर के हैं।

ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं के कोने में खड़ा, दर्शकों से घिरा एक छोटा-सा आदमी शांत-भाव से एक लड़की का रेखाचित्र एक तख्ती पर खींच रहा है। थोडी दूर दूसरे कोने में उत्सुक भीड़ के बीच खड़ा एक ज्योतिषी हाथ फैलाये युवक और युवतियों का भविष्य पढ़ रहा है। इसे गणित करने की ज़रूरत नहीं। भारतीय ज्योतिषियों की तरह, हाथ की रेखाओं पर दृष्टि गाड़ सिर को खुजला कर, बहुत सोच-विचार के बाद भविष्यवाणी करने का न तो समय ही है और न आवश्यकता। मालूम पड़ता है कि इन लोगों का भविष्य उसे कंठस्थ है। उनके हाथ देखते ही वह उन्हें खुली किताब की तरह पढ़ने लगता है। नव-वयस्कों के जीवन की अनिश्चितता और प्रगाढ़ विश्वास की एक झलक यहाँ सहज मिल जाती है।

सड़क की पटरी के एक कोने पर जूते पर पॉलिश करती हुई यह प्रौढ़ा कैसे तन्मय भाव से उन्हें चमका रही है। काम न होने पर वह पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ने में तल्लीन हो जाती है। कुछ दूर पर मशीन से चलने वाले खिलौनों को बेचता एक बिसाती है। फुदकती गिलहरियाँ, जीभ निकालते कुत्ते, कूदते बंदर और खिसकते

बबुओं के खिलौने बड़े सस्ते और मोहक हैं। लकड़ी के मजीरे बजाकर लोगों का ध्यान आकर्षित करने वाले दूकानों और रेस्तराओं के दलाल भी यहाँ मिलेंगे। अँग्रेज़ी में लिखे ऐसे नोटिस बोर्ड भी यहाँ दिखाई देंगे जो ऐयाशी की रहस्यमयी दुनिया का आमंत्रण देते हैं।

फूजी-स्टुडियो

"अगर आप नंगी तस्वीरें खींचना चाहते हैं, तो हमारे यहाँ आइये। नटी की तरह थिरकती नंगी लड़कियों की सभी मुद्रायें संभव है। हमारे नये खुले मयखाने में मोहिनी रमणियों की आवभगत स्वीकार कीजिये। वे टेलीफ़ोन करने पर कार में आकर मिल सकती हैं। रंगीन तस्वीर एक दिन में, काली और सफ़ेद तस्वीरें दो-घंटों में मिल सकती हैं।"

दूकानों के बाहर जगह-जगह सुर्ख़ रंग के टेलीफ़ोन रखे रहते हैं। 10 येन का सिक्का डाल कर टेलीफ़ोन पर बात की जा सकती है। बातचीत दोनों छोर से बार-बार 'मोशी-मोशी' दुहराने से होती है। जापानी लोग काफ़ी समय तक टेलीफ़ोन पर बात करते रहते हैं। वे समय और स्थान की पाबंदियों को बिल्कुल भुला देते हैं। 30-40 मिनट तक लड़के-लड़कियाँ टेलीफ़ोन पर उलझे रहते हैं, मानो दिन भर के मूक क्षणों को ब्याज सहित घंटों में वसूलना चाहते हैं।

समूचे तोक्यो को एक ही नज़र में आत्मसात करने का सुलभ साधन तोक्यो की मीनार है। इस पर चढ़कर सारा नगर देखा जा सकता है। यह मीनार सन् 1958 में बनी थी। यह संसार की सबसे ऊँची लोहे की मीनार है। इसकी ऊँचाई 333 मीटर है जो पेरिस की एफ़िल टावर से 73 मीटर ज्यादा है। यह लौह-मीनार दिखावटी नहीं है, इसे विद्युत की लहरों, विशेषकर टेलीविज़न और रेडियो की तरंगों को भेजने और पाने के लिये काम में लाया जाता है। टावर पर एक पाँच मंज़िल की इमारत है जिसमें दूकानें और जापान में बने बिजली के सामानों की प्रदर्शनी है। इसमें बिजली, संचार और इलेक्ट्रोनिक के नये उपकरण और उपलब्धियाँ देखने को मिलती हैं। 100 मीटर की ऊँचाई पर स्थित आलोक-मंच पर पहुँचा जा सकता है। इसके चारों ओर शीशे की गोल दीवारें हैं, जिनके पीछे तीन-चार मीटर की दूरी पर कई दूरबीनें लगी हैं। येन के सिक्के डालने से उसके सामने के शीशे का परदा हट जाता है और मीनार के चारों ओर का भूभाग बृहदाकार होकर आँखों के सामने आ जाता है। रात के समय जगमगाते तोक्यो की झाँकी देखी जा सकती है। इसके बीच में राजप्रासाद की फैली भूमि कुछ अँधेरी-सी लगती है। इसके चारों ओर की ऊँची इमारतों के अंदर के भाग स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। नियोन प्रकाश से प्रकाशित अक्षर और आकृतियाँ बृहदाकार होकर थिरकने लगती हैं। सड़कों की ओर अनन्त कारों के पीछे की लाल बत्तियाँ

चलती-सी नजर आती हैं और दूसरी ओर उनके हेड-लाइट्स की सफेद रश्मियाँ आँखों को चकाचौंध करती हैं। कुछ दूरबीनों से तोक्यो के दूरस्थ स्थानों को बत्तियों की अस्फुट लड़ियों के बीच देखा जा सकता है। तोक्यो की मीनार के ऊपरी कक्षों में लगी इन सशक्त दूरबीनों से सैकड़ों लोग नित्य आकर महानगरी के ज्योतिर्पुंजों की मनोहारी छटा देखते हैं। कुछ अकेले, कुछ अपने मित्रों या परिजनों के साथ, कुछ प्रेमी-युगल कमर में हाथ डाले और एक-दो मनचले गाल से गाल मिलाकर गले में बाँहें डाल कर दूरबीन के सँकरे शीशे में चार आँखें समाने का प्रयत्न करते हुए, मादकता में डूबे दिखाई दे जाते हैं।

अपने जापान प्रवास में बीसियों घंटों तक मैंने तोक्यो की विस्मय भरी सुंदरता को निहारा है। कभी किसी दूकान के सामने खड़े होकर वहाँ की चीज़ों को सराहा है; कभी वहाँ के नर-नारियों की शांत, गंभीर मुद्रा को देखा है, कभी तेज़ भागती हुई टैक्सियों और सुंदर कारों को ताका है और कभी रेलगाड़ियों से निकलते और उनके अंदर चढ़ते हुए अपार जन-समूह को देखा है। यह संसार का सबसे विशाल और अद्भुत नगर है। इसकी आबादी और विस्तार बढ़ता ही जा रहा है। यह अव्यवस्थित, भयावह और अमिट आकर्षणों का नगर है। यह पूर्व और पश्चिम, नये और पुराने, परम्परा और फ़ैशन का अनूठा संगम है। बेसबाल, सिनेमा, टेलीविज़न, स्वच्छंदता, नियोन के प्रकाश, व्हिस्की, शोर-गुल, नग्न-नृत्य, पचिंको की मशीन, पश्चिमी संगीत, गति और प्रगति के प्रति यहाँ के लोगों की उतनी ही आसक्ति है जितनी सूमो (कुश्ती) नोह और काबुकी नाट्यशालाओं, लकड़ी के मकानों, चेरी के फूलों, ज्योतिषियों, हाइकू-पद्यों, परिवार, किमोनो, कागज़ के पंखों, ओजिस मर्यादाओं, चाय-सेरेमनी और साके के प्रति है। वे घर के बाहर योरोपीय वेश-भूषा पहन कर पश्चिम के तौर-तरीकों का पालन करते हैं, किंतु घर के अंदर किमोनो पहन कर प्राचीन रीति-रिवाजों का अनुशीलन करते हैं।

यह विशाल, अद्भुत, रहस्यमय और रोमांचकारी नगर केवल देखकर ही सराहा जा सकता है।

दिपातो

•

तोक्यो में मुझे सबसे आकर्षक स्थान 'दिपातो' लगे। दिपातो अँग्रेज़ी शब्द 'डिपार्टमेंटल स्टोर' का संक्षिप्त जापानी रूपांतर है। छः-सात या आठ मंज़िल की बड़ी इमारत में दूकान, खेल-कूद, संग्रहालय, प्रदर्शनी, मनोरंजन-केन्द्र और रेस्तराँ के सामूहिक स्वरूप को 'दिपातो' नाम दिया गया है। संसार की शायद ही कोई ऐसी चीज हो, जो दिपातो में न मिल सके। इसके साथ-ही स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध, देशी-विदेशी, सभी के खान-पान और मनोरंजन के साधन मिलते हैं। दिपातो में जापान के वाणिज्य का चरम विकास निहित है और वे जापान की समृद्धि के विस्तृत विज्ञापन हैं।

दिपातो सुबह के दस बजे से लेकर शाम के पाँच-छः बजे तक खुले रहते हैं। इतवार को बन्द होने के बजाय हफ्ते के किसी और दिन बंद रहते हैं। एक दिपातो में कम-से-कम छः मंज़िलें होती हैं। उनकी हर मंज़िल पर विशेष तरह का सामान मिलता है। जैसे पहली मंज़िल पर स्त्रियों की पोशाकें, दूसरी मंज़िल पर बच्चों के कपड़े, खिलौने और किताबें इत्यादि। छठी मंज़िल पर बार्गेन-काउंटर होता है, जहाँ पर सभी चीजें बहुत सस्ते दामों पर मिल जाती हैं। अपनी बिक्री बनाये रखने के लिये ये दिपातो तीसरे-चौथे महीने फैशन बदल देते हैं, जिससे पुराने फैशन की चीजें, बार्गेन-काउंटर में बहुत ही सस्ते दामों पर बिकने को रख दी जाती हैं। ऊपर की छत पर रंगमंच हो सकता है या बच्चों के खेलने का उद्यान या तरह-तरह की चिड़ियों के पिंजड़े और रंगबिरंगी मछलियों की टंकियाँ बिकने को रखी रहती हैं। इस तरह एक दिपातो समूचे बाजार का सूक्ष्म संस्करण है। उसमें चले जाने पर अपनी पसंद और सामर्थ्य के अनुकूल सभी तरह की चीजों को एक ही इमारत के अंदर खरीदा जा सकता है।

दिपातो के प्रवेश-द्वार पर पहुँचते ही वहाँ के शीशे के दरवाजे स्वतः ही या तो खुल जाते हैं या खिसक कर अंदर जाने का मार्ग बना देते हैं। अंदर आते ही सूचना-काउंटर मिलेगा। वहाँ पर बैठी सुन्दर लड़कियाँ अक्सर अँग्रेज़ी समझ और बोल सकती हैं। वे आप का मार्ग-दर्शन करेंगी और आपकी सुविधा के लिये एक किताब दे देंगी, जिसमें दिपातो का विवरण लिखा होगा। एक कोने

पर आपको कई लिफ्टों के द्वार दिखाई देंगे। अगर आप लिफ्ट से जाना चाहते हैं तो थोड़ा इन्तजार कीजिये, किसी-न-किसी लिफ्ट का दरवाज़ा खुल जाएगा और उसमें से एक सुन्दर लड़की झुक कर आप का अभिवादन करेगी और कहेगी, 'इराश्शाई मासे' अर्थात 'आइये आपका स्वागत है।' आप लिफ्ट के अंदर हो लीजिये। जैसे ही एक मंज़िल के बाद दूसरी मंज़िल आयेगी, वह उस मंज़िल का नंबर बड़ी ही सुरीली आवाज़ में बतायेगी। आप जिस मंज़िल पर लिफ्ट से निकलना चाहेंगे, उसके आने पर वह आपको बाहर आने के लिये इशारा करेगी और कहेगी, 'दोमो आरी गातो म गुजाईमास' अर्थात्—'आप को मेहरबानी के लिये अनेक धन्यवाद' यह कह कर आप से विदा लेगी। इस तरह दिन भर शुक-सारिका की तरह कूकती ये लड़कियाँ स्वागत और धन्यवाद की रट लगाये रहती हैं।

आप लिफ्ट की बंद हवा में खड़े होकर शायद ऊपर की मंज़िल पर जाना पसंद न करें, तब आप एस्केलेटर (चल-सीढ़ी) का प्रयोग कर सकते हैं। एस्केलेटर के हर मंज़िल के प्रवेश पर दिपातो की निर्धारित पोशाक पहिने एक लड़की आपको खड़ी हुई मिलेगी। आपको देख कर वह थोड़ा सिर झुका देगी और आपके स्वागत का मंत्र पढ़ेगी। आप अपना कदम संभाल कर एस्केलेटर की सीढ़ियों पर रख लें। अगली मंज़िल पर पहुँचने ही दृष्टि उठाने पर आपको एक बोर्ड दिखाई देगा, जिसमें उस मंज़िल पर मिलने वाले सामान का नाम लिखा होगा। बेहतर है कि आप सबसे ऊपर की मंज़िल पर पहुँचकर दिपातो की देख-भाल शुरू करें। नीचे उतरते समय आप कुछ-न-कुछ खरीद कर अवश्य लेकर जाना चाहेंगे अन्यथा आपको खाली हाथ लौटते देख कर एस्केलेटर के प्रवेश-द्वार पर खड़ी सुंदरियाँ आपके बारे में क्या सोचेंगी।

दिपातो में सामान बड़े ही सुंदर ढंग से सजा कर रखा जाता है। हर एक सामान की ट्रे के आगे एक लेबिल लगा होता है, जिस पर रोमन गिनती के अक्षरों में उसके दाम लिखे रहते हैं। इन मेज़ों के बीच में सुंदर लड़कियाँ, दिपातो के निर्धारित लिबास में खड़ी मिलेंगी। आप जिस चीज़ के बारे में पूछेंगे, वह उसके बारे में अपनी सुरीली आवाज़ में विस्तार से बतायेगी। आप चाहें तो एक दिपातो में किसी चीज़ को खरीदे बगैर काउंटरों पर खड़े होकर घंटों बिता सकते हैं। इसके लिए आप किसी भी सेल्स-गर्ल या सेल्स-मैन को नाक-मुँह सिकोड़ते नहीं पायेंगे। आपको यही आभास मिलेगा कि आपका वहाँ आ जाना सबको बहुत अच्छा लगा।

अगर आपको कोई चीज़ पसंद आ गई, तो आप सेल्स-गर्ल को इशारा कर दीजिये। वह उसे उठा कर, एक सुंदर कागज़ में बड़े ही अच्छे ढंग से बाँध कर, सिनेमा के टिकट के बराबर एक पर्ची के साथ आपको दे देगी। काउंटर से सामान

उठाते समय वह आपसे उसकी क़ीमत के नोट (येन) भी ले लेगी। अगर आपको कोई चीज़ वापस लेनी है, तो वह भी आपको उस पैकेट के साथ दे देगी। इसके साथ-ही कहेगी 'आरीगातो-गुजाईमास' 'आपका बहुत-बहुत शुक्रिया।' इस हलकी गूँजती आवाज को सुनकर आपको लगेगा कि आप फिर इस काउंटर पर आयें, कुछ सामान खरीदें।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि आपकी भाषा, काउंटर पर खड़ी सेल्स-गर्ल न समझ पाए। तब वह आपको, रुकने को कहेगी और तेज़ी से किसी और पुरुष या स्त्री को बुला लायेगी, जो आपकी भाषा समझ सके और आपको चीज़ों के बारे में बता सके। इस कठिनाई को दूर करने के लिये हर एक दिपातो में ऐसे बहुत से युवक-युवतियाँ रहते हैं, जो दुभाषिये का काम करते हैं। न केवल अँग्रेज़ी जानने वाले बल्कि स्पेनिश, जर्मन, इटालियन, रूसी, ग्रीक यानी संसार की लगभग सभी भाषाओं के दुभाषिये आपको वहाँ मिल जाएँगे। इनमें से बहुत से लोग सुबह और शाम दिपातो में दुभाषिये का काम करते हैं, बाकी समय किसी कॉलेज या यूनिवर्सिटी में पढ़ते हैं।

जिस मंज़िल पर स्त्रियों के वस्त्र बिकते हैं, वहाँ श्वेत और सुनहरी बालों वाले अनेक नारी-मॉडल हैं। वे किमोनो में मिलने वाली स्कर्ट, जैकेट, ब्लाऊज़, शाल आदि पहने हुए होंगी। प्राय दिपातो में किमोनो का एक अलग ही कोना होता है। किमोनो के बड़े-बड़े बेल-बूटे बहुत चमकदार होते हैं। इन्हें देखकर लगता है मानो आप फूलों की क्यारी में पहुँच गये हैं। उनके ऊपर कमरबंद की तरह बँधने वाली ओबी पर भी फूल-पत्तियाँ, रेखायें या अन्य प्राकृतिक चीज़ों की तस्वीरें होती हैं।

जापानी रुचि के अनुसार बे-मेल रंगों का कपड़ा पहनना ज़्यादा अच्छा समझा जाता है। नीले रंग के किमोनो पर सुनहरे या लाल रंग की ओबी, वहाँ के सौंदर्य के मापदंड के अनुसार अच्छी समझी जाती है।

दिपातो के ऊपरी भाग में रेस्तराँ होता है। यहाँ जापानी, चीनी और योरोपीय ढंग का खाना मिलता है। जिस तरह का भोजन चाहिये उसकी बानगी बाहर शीशे की अलमारियों में देखी जा सकती है। साथ में उसकी क़ीमत भी लिखी होती है।

हर दिपातो में कोई-न-कोई सांस्कृतिक कार्यक्रम होता रहता है। मैंने वहाँ एक ढंग की कला-प्रदर्शनी देखी। एक प्रदर्शनी नेपोलियन बोनापार्ट की जीवनी से सम्बन्धित भी देखी। यून ए. ओ द्वारा एशिया के विभिन्न देशों को दी जाने वाली सहायता को एक स्थान पर तस्वीरों और चार्टों द्वारा दिखाया गया था। वहाँ हिन्दुस्तान की कुछ आकर्षक तस्वीरें भी थीं। लेकिन वहाँ एक बहुत बड़ा पोस्टर देखकर मुझे दुःख हुआ, जिसमें एक अधनंगी नार की स्त्रियों के चाँदनी

चौक की सड़क पर खड़े हुए दिखाया गया था, और उसके नीचे लिखा था—'यह नई दिल्ली है।'

हर दिपातो में एक रंगमंच होता है, जिस पर नृत्य या नाटकों का आयोजन होता रहता है। सबसे ऊपर की खुली छत पर बच्चों के खेलने की व्यवस्था होती है। वहाँ पर ऐसी मशीनें लगी होती हैं जिनमें पैन डालने से शर्बत या अन्य पेय से कागज के गिलास भरे जा सकते हैं। जापानी लोग अपने बच्चों को बहुत दुलार करते हैं। उनकी हर ज़िद को पूरा करते हैं। जापानी बच्चे बहुत सुंदर होते हैं। उनके लाल-लाल गाल, पतले होंठ, छोटी-छोटी सीप की तरह आँखों को देखकर जापान की गुड़ियाएँ स्मरण आने लगती हैं। दिपातो में उनके लिये मेज़ों पर बिजली से चलने वाले खिलौने—कुत्ते, मोटरें आदि मिलेंगे। वे जिस जगह से चलते हैं, वहीं आकर रुकते हैं। वहाँ पर सैकड़ों बच्चे किसी भी खिलौने को उठाकर चलाते रहते हैं, किन्तु कोई भी इस पर आपत्ति नहीं करता।

मोटे तौर पर वहाँ पर रखी गुड़ियों को पाँच श्रेणियों में बाँटा जा सकता है।

लकड़ी की बनी छोटे बच्चों की आकृति वाली गुड़ियाएँ ज़्यादातर नंगी होती हैं। उनका सिर, पैर, शरीर—भारी, चिकना और सफेद होता है। जापानी अपने मित्रों को, बच्चे के पैदा होने या विशेष अवसर पर ऐसी गुड़िया उपहार के रूप में देते हैं। इस तरह की गुड़ियाँ विशेष तौर से क्योतो क्षेत्र में बनाई जाती हैं।

दूसरी श्रेणी में लकड़ी से तराश कर बनाई गई गुड़ियाँ आती हैं। उनमें सुंदर स्त्रियों, योद्धाओं, देवताओं और बच्चों की आकृतियाँ अनेक रंगों से रंगी जाती हैं। इनमें रंगों की गहरी परतें इस सुंदरता से लगाई जाती हैं कि उन्हें देखकर पोशाक की तहों का भ्रम होता है।

तीसरी श्रेणी में कपड़ों की गुड़ियाँ आती हैं। मिट्टी या लकड़ी की बनी हुई इन गुड़ियों को बड़े सुंदर ढंग से पोशाकें पहनाई जाती हैं। ये भी जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के लोगों का प्रदर्शन करती हैं जैसे बच्चे, सामंत, साधारण नागरिक, नट और नटी अथवा दैत्य और देवता इत्यादि। इनकी लंबाई एक इंच से लेकर एक फुट तक होती है। जापानी स्त्रियों की तरह-तरह की पोशाकों को इन गुड़ियों के पहनावे में बड़ी सुंदरता से दिखाया जाता है। इस तरह की गुड़ियों का मूल्य और आदर बहुत होता है। ये गुड़ियाँ अधिकतर घरों को सजाने या 'तोकोनोमा' पर रखने के योग्य होती हैं। उनके कपड़े ऋतु के अनुकूल बदले जा सकते हैं। आजकल घरों, दूकानों और दफ़्तरों में इन गुड़ियों को शीशे के केस में रख कर प्रदर्शित किया जाता है। आधुनिकता लाने के लिये कुछ गुड़ियों के हाथ-पैर या कमर के हिलने-डुलने की व्यवस्था कर दी जाती है। ऐसी गुड़ियाँ बच्चों को बहुत प्रिय होती हैं।

चौथी श्रेणी में चीनी या पीतल की बनी गुड़ियाँ आती हैं। ये ज्यादातर जापानी घरों के ताखों में रखी जाती हैं। ये गुड़ियाँ काफी मँहगी होती हैं, ज्यादातर धनियों के घरों में ही पाई जाती हैं और इस चतुराई से रंगी होती हैं कि इन्हें देखकर यह बताना मुश्किल होता है कि ये किस चीज की बनी हुई हैं।

पाँचवीं श्रेणी में प्लास्टिक की गुड़ियाँ आती हैं। इनमें से कुछ पश्चिमी वेश-भूषा में तथा कुछ जापानी वेश-भूषा में मिलती हैं। इनकी तड़क-भड़क वाली वेश-भूषा बड़ी सुंदर मालूम पड़ती है। ये गुड़ियाँ विदेशियों को उपहार में दी जाती हैं। इनमें 6-7 साल के बच्चों की शक्लें होती हैं। ज्यादातर लड़कियों की आकृतियाँ होती हैं जो किमोनो-गुड़िया के कपड़े पहने होती हैं। इन गुड़ियों पर पश्चिमी प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

जापान में गुड़ियाँ बनाने की परंपरा प्राचीन काल से चली आ रही है। बौद्ध धर्म के प्रचार के बाद वहाँ अगणय बुद्ध-मूर्तियाँ बनाई जाने लगीं। उनमें से कुछ मूर्तियाँ गुड़ियों के आकार की भी होती थीं और उनका उपयोग उपासना के लिये होता था। विशेष उत्सवों और पर्वों के अवसर पर ऐसी मूर्तियों को विशाल रथों में बैठाकर सड़कों पर जुलूस निकाला जाता था। तांत्रिक मतों के प्रभाव के फलस्वरूप कागज या घास की बनी गुड़ियों का प्रयोग रोग या दुर्भाग्य को दूर रखने के लिये किया जाता था। अब भी प्रति वर्ष 3 मार्च को मनाये जाने वाले लड़कियों के पर्व और 5 मई को आयोजित लड़कों के पर्व में गुड़ियों का विशेष स्थान होता है। इन दिनों गुड़ियों को सजा कर उनका जुलूस निकाला जाता है। छोटे बच्चों का मन बहलाने के लिये भी गुड़ियाँ बनाई जाने लगी हैं। गुड़ियाँ बनाना और विविध अवसरों पर उनका प्रदर्शन करना जापानी परंपरा का अंग बन गया है।

अधिकांश जापानी महिलाएँ सुंदर गुड़ियाँ बनाने में बड़ी दक्ष होती हैं। वे बच्चों के खेलने के लिये ही गुड़ियाँ नहीं बनातीं उन्हें कलाकृति के रूप में बना कर सँजोती हैं और समय-समय पर घर या बाहर उनका प्रदर्शन करती हैं। गुड़ियाँ बनाना बहुत-सी स्त्रियों की हाबी है। बड़े शहरों में ऐसे बहुत से स्टोर हैं, जहाँ गुड़ियाँ बनाने की कला का प्रशिक्षण दिया जाता है। गुड़ियों को बनाने में लकड़ी, मिट्टी, पीतल, चीनी और अब प्लास्टिक का प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक श्रेणी की गुड़ियों के अलग-अलग नाम हैं और उनको बनाने की कला भी भिन्न है। उनकी आकृति, साज-सज्जा, लंबाई, चौड़ाई के निर्धारित नियम हैं जिनका पालन गुड़ियाँ बनाने वालों के लिये आवश्यक समझा जाता है। डिपार्टो में ऐसे प्रदर्शन होते रहते हैं, जिनसे गुड़ियाँ को बनाने की कला को प्रोत्साहन मिल सके। इस तरह गुड़ियों के बनाने की कला को श्रेणी में रखा गया है।

गुड़ियों को बनाने वाले कलाकार बहुत प्रसिद्ध होते हैं और उनका वही

आदर और सम्मान होता है, जो चित्रकार या मूर्ति बनाने वालों का। वास्तव में गुड़ियाँ बनाना और मूर्तियाँ बनाना दोनों ही उच्च-कोटि की कलाएँ हैं। इन सुंदर गुड़ियों को देखकर मन आह्लाद से भर उठता है।

दिपातों के सबसे नीचे के कक्ष में अक्सर खाने की चीजें मिलती हैं। इनमें जापानी बिस्कुट-केक आदि होते हैं या चावल की बनी हुई चीजें होती हैं, जो हमारे यहाँ के पेड़े और बरफी से मिलती-जुलती हैं। उनमें चीनी की मात्रा बहुत कम होती है। क़रीब-क़रीब सभी फलों के बहुत अच्छे रस वहाँ मिलते हैं। मछली जापानियों का भोज्य पदार्थ है। छोटी अँगुली के बराबर से लेकर बहुत बड़ी-बड़ी तरह-तरह की मछलियाँ दिपातों में मिलती हैं। अचार प्रायः सभी सब्जियों के बनते हैं। फलों की दूकान में बड़े-बड़े सेव, अनन्नास, नासपातियाँ आदि मिलती हैं। जापान की नासपाती बड़ी स्वादिष्ट और हमारे यहाँ की नासपाती से दुगनी-तिगुनी बड़ी होती है। फ़ारमोसा के केले भी मिलते हैं। दो केलों की कीमत करीब दो रुपए होती है। जापानी इसे बहुत पसन्द करते हैं। खरबूजे भी बहुत महँगे मिलते हैं। एक खरबूजे की क़ीमत कम-से-कम पाँच या छः रुपए होती है। सफ़ेद और लाल रंग के अँगूर, अनूचा जैसे बड़े और काफ़ी सस्ते मिलते हैं। जिन लोगों को मांस से परहेज हो उनके लिये फलों की कोई कमी नहीं। दूध-मट्ठे के लिये मशीनें लगी हुई हैं। उनमें सिक्का डाल कर उसे निकाला जा सकता है। मेरे जापानी दुभाषिये ने बताया कि प्रत्येक जापानी दिन भर में दूध की पाँच छः बोतलें ले लेता है। शायद इसीलिए उनके स्वास्थ्य में सुधार हुआ है। पनीर और मक्खन भी जापान में बहुत सस्ता है। पनीर की गल्लाखें लोग जेब में डाल कर चलते हैं, भूख लगने पर खा लेते हैं।

दिपातों में स्त्रियों के शृंगार का सामान भी मिलता है जैसे मोतियों की जंजीरें, सोने और चाँदी की पतली जजीरें। जापानी स्त्रियाँ गले में हल्की जंजीर या मोती की लड़ी पहिनती हैं। कुछ स्त्रियों को कानों में बाली पहने हुए भी मैंने देखा।

दिपातों में विदेशियों के लिए अलग काउंटर होते हैं, जो नो-टैक्स काउंटर कहलाते हैं। यहाँ साधारण चीज़ों के दामों में 10 प्रतिशत कमी होती है। सामान के संबंध में पास-पोर्ट पर आवश्यक विवरण दिया जाता है ताकि उसे दिखा कर सामान एयरपोर्ट से बाहर ले जाया जा सके। जापान ने इलैक्ट्रानिक्स का सामान बनाने में बहुत उन्नति की है। यहाँ के ट्रांज़िस्टर दुनिया भर में अपना सानी नहीं रखते। छोटे-से-छोटे ट्रांजिस्टर, दियासलाई की डिब्बी के आकार के बनते हैं। मैंने एक ट्रांज़िस्टर धूप के चश्मे में देखा। कान की कमानी में लगा था। चश्मा लगा लीजिये और गाने भी सुनिये। एक कोने में ग्रामोफोन के रिकार्डों से भरा कमरा होता है। वहाँ आप अपने मनपसंद रिकार्ड बजवा सकते हैं, चाहे उसे

खरीदें या न खरीदें। आपकी फरमाइश पूरी करने में वहाँ का सेल्समैन किसी भी तरह की आपत्ति नहीं करेगा। ज्यादातर पश्चिमी गाने बजते हैं, खासतौर से जो लोकप्रिय।

बार्गेन-काउन्टर सब से हैरत वाली जगह होते हैं। यहाँ सामान बहुत सस्ता मिलता है। सूती और ट्वेरून से बनी हुई कमीज पाँच-छः रुपये में मिल सकती है। सूती कपड़ा इतना सस्ता है कि विश्वास नहीं होता। ब्लाऊज के कपड़े की क़ीमत एक रुपया मीटर है। बच्चों की बहुत अच्छी घड़ियाँ 20-25 रुपये में खरीदी जा सकती हैं। ऊनी पतलून 30 रुपये में मिल जाता है, पर इन्हीं चीज़ों के दाम अपने खास काउन्टर पर दुगुने या तिगुने होते हैं। जापान के व्यवसाय में ज़ोर इस बात पर दिया जाता है कि सामान जल्दी-जल्दी बिके, चाहे उस पर मुनाफ़ा थोड़ा ही हो। इस तरह दस्तकारों को हमेशा काम में लगाए रखा जा सकता है।

तोक्यो में इस तरह के 22 दिपातो हैं। उनमें सबसे शानदार 'मित्सुकोशी' का दिपातो समझा जाता है। मित्सुकोशी के प्रवेश-द्वार के साथ लगे बड़े हाल में कवानन देवी की अत्यंत विशाल और मनोहारी मूर्ति स्थापित है। उसकी सुनहरे और हरे चमकदार रंगों से वेष्ठित भाव-भंगिमा में अनंत शांति और आशीर्वाद की मुद्रा दिखलाई पड़ती है। जापानी व्यवसाय-संस्थानों और दूकानों में कवानन देवी लक्ष्मी की तरह पूजी जाती है। भारत की तरह जापान में भी धर्म और व्यवसाय को साथ-साथ रखकर काम किया जाता है।

अब आप या तो लिफ्ट से नीचे चले जायें या एस्केलेटर पर जाना पसंद करें। वहाँ पर आपको 'फूरोकिशी'— एक रेशम का एक झोला मिलेगा, जिसमें आप अपना सामान रख सकेंगे। चाहें तो कागज़ का थैला भी मिल सकता है। वहाँ जो मशीनें लगी हैं उनमें से एक में निर्धारित क़ीमत येन का सिक्का डाल दीजिये, एक झोला निकल आयेगा।

जब मैं बाहर जाने लगा तो मेरे साथ की दुभाषी लड़की ने झुक कर अभिवादन किया और मुझे आने के लिये धन्यवाद दिया और कहा आपसे फिर मिलने की आशा करती हूँ।

जो लोग योरुप और अमरीका हो आये हैं, वे भी इस बात से सहमत हैं कि संसार में दिपातो से बढ़ कर सामान खरीदने की दृष्टि से सुविधाजनक और सस्ती कोई और जगह नहीं है।

प्रत्येक दिपातो में कलात्मक वस्तुओं के अतिरिक्त कलाकक्ष भी होते हैं। वहाँ जापान के प्रसिद्ध चित्रकारों के मूल चित्रों या प्रतिलिपियों का प्रदर्शन होता है। उनको समझने के लिये कला की पृष्ठभूमि के बारे में कुछ जानकारी आवश्यक है।

चित्रकला का चरम विकास और जन-जीवन में उसकी व्याप्ति जापान की

विशेषता है। इस कला का मूल स्रोत कन्नोन बौद्ध धर्म है। अवलोकितेश्वर, बोसात्सु (बोधिसत्व) और रोशी, सोशी इत्यादि भिक्षु-भिक्षुणियों के चित्र इसके विषय हैं। भिक्षुओं में सबसे अधिक चित्र बुद्धधर्म नामक भारतीय भिक्षु के बनाये मिलते हैं। उसने जापान में बुद्ध-धर्म को फैलाया था। वहाँ के बौद्ध उसे 'दरुण' के नाम से पूजते हैं। चित्रकार सेशु द्वारा बनाए गए उसके चित्र में उसकी चमकती हुई आँखें, दबे हुए होंठ, तेजस्वी मुख पर रेखाओं की झलक बड़ी अभिव्यक्ति-पूर्ण हैं।। मध्य युग के अधिकांश प्रख्यात चित्रकार बौद्ध भिक्षु थे जो बौद्ध-विहारों में सृजन-रत रहते थे। वास्तव में जापान की चित्रकला को समझने के लिये बौद्ध अवतारों और धर्म परंपराओं का ज्ञान बहुत आवश्यक है।

भारत की चित्रकारी की तरह जापान की चित्रकारी में भी यथार्थ और पार्थिव की अवहेलना हुई है। प्रकृति या स्थूल वस्तुओं के चित्र बनाते समय चित्रकार उनकी तस्वीर खींचने की कोशिश नहीं करता, उनके अंतर की आत्मा या भावों को दरशाने का प्रयत्न करता है। जापानी चित्रों में पृष्ठभूमि का प्रायः अभाव रहता है। उनमें दिये गये दृश्यों या स्थानों की दूरी की उपेक्षा की जाती है। दृश्य में गोलाकार (सोलिड्स) के चित्रण में छाया (शेडिंग) का प्रयोग नहीं होता। उनकी टैकनीक पर चीनी टैकनीक का गहरा प्रभाव है। काली स्याही से बनाए गए ये चित्र बड़े ही आकर्षक और मनोहारी होते हैं।

जापानी चित्रकला या तो लंबे 'काकीमोनो' पर देखने के लिये होती है या 'हूमूमाये' या खिसकते हुए पर्दों अथवा तह करके रखे जा सकने वाले पर्दों पर इन्हें 'ब्यूएबो' कहते हैं।

जापानी चित्र कागज़ या रेशम के कपड़े पर बनाये जाते हैं। इसके लिए काफी लंबे पर कम चौड़े कागज़ काम में लाये जाते हैं। रेशम के चौड़े पर्दों पर भी चित्रकारी की जाती है। उन पर काली स्याही या पानी में घुले रंगों का उपयोग किया जाता है। 'हूदे' उनकी विशेष तरह की तूलिका है जिससे बड़ी सफ़ाई और सादगी से चित्रों की रेखाएँ खींची जाती हैं। लकीरों की गहराई या हल्केपन से जापानी चित्रकार वही प्रभाव पैदा करते हैं, जो पश्चिम के चित्रकार ब्रश के रंगों के अनुपात को गाढ़ा या फीका करके करते हैं।

जापानी चित्रकार रेखाओं के उतार-चढ़ाव से बड़े ही सुंदर चित्र बनाते हैं। उनके गहरे या हल्केपन से कितनी ही भावनाएँ व्यक्त की जा सकती हैं। ऐसे चित्रों को न केवल पुराने महलों, मंदिरों या अजायबघरों में देखा जा सकता है, साधारण घरों के पुस्तकालयों में भी उनकी बहुतायत है।

चित्रों में मुखाकृति की सौम्यता नहीं बल्कि चरित्र की विशेषताओं और अंतर की गहराइयों को प्रदर्शित करने का यत्न किया जाता है। इन चित्रों में एक विशेष सादगी का भाव है; उनके तपस्वी जीवन और जाग्रत आत्मा के लिये वह

पृष्ठभूमि परमावश्यक है।

इन चित्रों में प्राकृतिक दृश्यों का भी बड़ा ही आकर्षक अंकन होता है। ऐसे चित्रों को 'सानसई' कहते है, अर्थात् पानी और पहाड़ वाले। इन चित्रों में उन्नत पर्वत-शिखर, चट्टानें, पेड़ और झोपड़ियां दिखाई जाती हैं। पश्चिमी कलाकृतियों से भिन्न, इन चित्रों में वास्तविकता की ओर ध्यान नहीं दिया जाता है। इनमें कल्पना की पूरी छूट रहती है। इन चित्रों में चित्रकार की आशाओं और आदर्शों को अभिव्यक्ति मिलती है। जड-चेतनमय सृष्टि को हृदयंगम कर कलाकार अपने मन की प्रतिक्रियाओं को चित्रों में उतारता है। ये चित्र कलाकार के मूड की कलात्मक अभिव्यक्ति होते हैं। बौद्ध होने के नाते इन चित्रकारों का स्वर्ग सांसारिक सुखों या परियों से भरा स्वर्ग नहीं, वरन् वह सुंदर आनंदलोक है, जहां उसके शरीर और आत्मा को विश्राम मिलता है।

जापानी चित्रों में फूल और पक्षियों का चित्रण अत्यंत मनोरम ढंग से किया जाता है। चित्रकार उनकी आकृति बहुत संवारकर बनाता है। उनके रंगों की सज्जा बहुत अनोखी होती है। उन चित्रों की विषय-वस्तु होगी—पतझर वाले पेड़ जिनकी शाखाएँ पानी की ओर झुकी है बांस या नेजे के पौधों के बीच में अपना सिर उठाये चलता तीतर; पानी में तैरता बत्तखों का जोड़ा, हवा में उड़ता सारस या पेड़ की शाखा को सजाती हुई सुनहरे रंग की छोटी-छोटी चिड़ियां। ऐसा लगता है, मानो सुंदर स्वरूपों से भरी प्रकृति की झोली से लाकर कलाकार ने ये दृश्य कागज या कपड़े पर मढ़ दिये हैं।

चित्रकला गिने-चुने चित्रकारों द्वारा संरक्षित देवी नहीं है। न ही वह महलों और संग्रहालयों की परिधि में बंधी है। उसे नित्यप्रति के जीवन में उतारने की कोशिश की गई है।

कागज का एक टुकड़ा जिसकी चौड़ाई कम पर लंबाई बहुत ज्यादा। उस पर किसी साहित्यिक सूक्ति या किसी राष्ट्रीय परंपरा का प्रदर्शन करती हुई कृतियां हों तो उन्हें जापान में 'ईमानो-ओकीमोनो' कहते हैं। अंग्रेजी में उन्हें 'पिक्चर्स-स्क्रॉल' कहा जा सकता है। अजायबघरों में ऐसे 'स्क्रॉल' सब शीशे के केसों में प्रदर्शित किए जाते हैं। सभी जापानी घरों में ऐसे स्क्रॉल मिलते हैं और विशेष उत्सवों या अवसरों पर उन्हें प्रदर्शित किया जाता है। 'पिक्चर्स-स्क्रॉल' जापान की विशेषता है। इन्हें 'यामातोए' या शुद्ध जापानी चित्र कहा जा सकता है। 'यामातोए' की कला का विकास करीब आठ-सौ साल पुराना है। प्रारंभ में इस तरह के स्क्रॉल दीवारों को चित्रित करने के काम आते थे। इनमें मुखाकृतियां, मकान, और फूल-पत्तियां लकीरों से बनाई जाती हैं और उन्हें सुंदर रंगों से भर दिया जाता है। इनमें चित्रित दृश्यों को स्पष्ट करने के लिए कभी-कभी पदांश या अन्य साहित्यिक कृतियों के अंश सुंदर ढंग से लिख दिये जाते हैं। एक

दूसरे से युद्ध करते हुए, अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित अश्वारोही सैनिकों का चित्रण भी स्क्रॉल पर बड़े आकर्षक ढंग से किया जाता है। ये चित्र भारत की मुगल-कालीन चित्रकला के उन नमूनों से मिलते-जुलते हैं, जिनमें फारसी की साहित्यिक पुस्तकों या जीवन-चरित्रों को चित्रों द्वारा स्पष्ट किया गया है। एक ही स्क्रॉल में अनेक घटनाओं या दृश्यों को दिखलाने की कोशिश की जाती है। काल और स्थान की भिन्नता होते हुए भी कई दृश्य एक ही चित्र में शामिल कर लिये जाते हैं। प्रभाव डालने के लिये अपेक्षित आकृति की लंबाई और चौड़ाई में भी अंतर कर दिया जाता है। 'पिक्चर स्क्रॉल' का मुख्य उद्देश्य किसी कहानी को चित्रित करना होता है। इसमें दर्शाया जाता है कि वस्तुओं की तुलना में मनुष्य का महत्व अधिक है। अन्य जापानी चित्र भी बड़े सुन्दर होते हैं, जिनमें अक्सर सुंदर स्त्रियों या काबुकी कलाओं का चित्रण होता है।

जापान की स्त्रियाँ बेलों, फल-फूलों, पर्वत-मालाओं या समुद्री लहरों के चित्रों से छपी हुई किमोनो, ओबा, हाओरी (कोट) और शिताणी (कालर ऑफ एन अण्डर वियर ऑफ किमोनो) पहनती हैं। इन वस्त्रों के रंग बड़े भड़कीले और चमकीले होते हैं। केवल लड़कियाँ या युवतियाँ ही ऐसे वस्त्र नहीं पहनती हैं, अधेड़ उम्र की स्त्रियाँ भी उनको पसंद करती हैं, हालांकि उनके वस्त्रों पर छपे नमूने छोटे और हल्के रंगों में बने हुए होते हैं। जापानी घरों में लकड़ी के बने हुए बक्से, कलमदान, मेजें, लकड़ी के प्याले, चीनी के बर्तन भी ऐसी ही डिज़ाइनों और नमूनों से सजे हुए होते हैं। ये नमूने ज्यादातर मध्यकालीन चित्रों की नकल या छाया होते हैं। नित्य काम में आने वाली चीज़ों पर भी कलात्मक चित्र मिलते हैं। सीप के कंघे, बालों की पिनें, चाँदी के पाइप, तलवार की मूंठ, सिग्रेट-केस और चमड़े की छोटी-छोटी थैलियों पर भी सुंदर चित्रों के प्रतिरूप मिलते हैं। जापान के जन-जीवन में कला-कृतियाँ घुल-मिल गई हैं। ये हमें प्रकृति के बहुत निकट ले जाती हैं। उनमें प्रकृति की फोटोग्राफी नहीं होती, प्रकृति के सौंदर्य को निचोड़ कर जीवन में आत्मसात करने की कोशिश की जाती है। जैसे चेरी के वृक्ष का केवल तना ही दिखाया जाता है, ऊपर और नीचे के भाग चित्रित नहीं किये जाते हैं। फूलों से लदी हुई शाखाएँ जमीन की तरफ झुकी दिखाई जाती हैं लेकिन अपने तनों से जुड़ी नहीं दिखाई जातीं। यह पश्चिमी चित्रकारों की पद्धति से सर्वथा भिन्न है। वे प्रकृति को उसकी समग्रता के साथ अपनाते हैं। किसी मानव या प्रकृति की आकृति के बदले उनके रूप को दर्शाने की कोशिश की जाती है। जापानी कलाकार के लिये दृष्टिगोचर सत्य, सत्य का बाहरी रूप है। सत्य तो भावगम्य और आत्मसात करने योग्य है। उसमें सन्निहित भाव को, उसकी आत्मा को चित्रित करने में ही कलाकार की चरम सफलता है। इन चित्रों की सादगी देखते ही बनती है। कुछ चित्रों में पृष्ठभूमि का बहुत-सा भाग सूना छोड़

दिया जाता है अथवा गोल-रेखाएँ बना दी जाती हैं। इनमें उमड़ते बादलों का आभास होता है। खुली जगह से चित्र की सुंदरता बढ़ जाती है। उसे देखकर मन में शांत भावों का उद्दीपन होता है।

जापानी स्त्रियाँ जब सुंदर फूलों से सजे किमोनो पहन कर निकलती हैं, तो ऐसा जान पड़ता है कि बड़े फूलों से सजी वन-देवियाँ हैं। ऐसा भी कह सकते हैं कि यदि फूल अपनी टहनियों पर चल सकते, तो वे किमोनो पहिने हुई जापानी रमणियों की तरह चलते। जापानी चित्रकार इनके सौंदर्य से पूरी तरह अवगत हैं। इसीलिये बहुत से कलाकारों ने जापानी स्त्रियों के अत्यंत मोहक चित्र खींचे हैं। उनकी छोटी और भोली आँखें, मुलायम और चिकनी त्वचा, भावहीन मुखाकृति और नन्हे हाथ-पैर अनेक मनोहारी कलाकृतियों के विषय हैं।

प्रत्येक जापानी गृहस्थ अपने घर में सुंदर कला-कृतियों को सजाकर रखना चाहता है। उनके मकानों के मुख्य कमरों में एक कोने में फर्श से चार या पाँच इंच ऊँचा एक चबूतरा होता है, जिसे 'तोकोनोमा' कहते हैं। उसके ऊपर क़ीमती लकड़ी या सुंदर बाँसों के बने हुए खंभे होते हैं। तोकोनोमा के पास की दीवार पर काकीमोनो (पिक्चर-स्क्रॉल) टाँगा जाता है और उस पर कलात्मक वस्तुएँ, जैसे फूलों का गुलदस्ता, सुंदर पत्थर आदि रखे जाते हैं। जो गृहस्थों की कलात्मक सुरुचि के द्योतक समझे जाते हैं। किसी जापानी घर में जाकर अभ्यागत तोकोनोमा पर नज़र डालकर आनंद उठा सकते हैं। तोकोनोमा भारत के पुराने मकानों में बने 'आलों' या 'ताखों' का ही यह प्रतिरूप है और इसकी बनावट बौद्ध-धर्म से संबंधित है। प्राचीन काल में जापानी घरों में जिस स्थान पर बुद्ध की मूर्ति या उनकी पूजा की सामग्री रखी जाती थी, आजकल उसका केवल कलात्मक महत्व रह गया है। ऐसे स्थानों पर लटकती हुई तस्वीरों के चारों ओर बहुत ही सुंदर किनारी लगी हुई होती है। ये तस्वीरें बक्सों में बंद करके रख ली जाती हैं। किसी उत्सव या किसी विशिष्ट मेहमान के आने पर इन्हें टाँग दिया जाता है। विशिष्ट उत्सवों पर विशिष्ट तस्वीरें टाँगी जाती हैं। प्रत्येक मौसम में उसके अनुरूप ही कोई चित्र टाँगा जाता है। जैसे गरमी के मौसम में टँगे चित्र में कमल या कोमलांगी का चित्रण होगा। जाड़ों के दिनों में पर्वतमालाओं या सुंदर फूलों के चित्र होंगे। हर जापानी परिवार के पास दस या पंद्रह चित्र होते हैं, जो समय और अवसर के अनुकूल तोकोनोमा पर टाँग दिए जाते हैं। कभी-कभी इन चित्रों में चीनी या जापानी कविता के अंश सुंदर अक्षरों में लिखे रहते हैं।

'ईकेबाना' या 'बेनसाई' की कृतियों से तोकोनोमा के चबूतरों को सजाया जाता है।

ताज़े फूलों को सजाने की कला को 'ईकेबाना' कहते हैं। जापान में जीवन के सभी क्षेत्रों में ईकेबाना की कला का प्रयोग होता है। किसी भी बच्चे की

शिक्षा, ईकेबाना कला में कुशल हुए बिना अधूरी समझी जाती है। जापानियों के कला-प्रेम की अत्यंत आनंददायनी अभिव्यक्ति ईकेबाना द्वारा होती है। ईकेबाना कलाकार फूलो, पत्तियों और टहनियों को वैसे ही सजाता है, जैसे कोई चित्रकार विविध रंगों के मिलाप से चित्र बनाता है।

ईकेबाना कला का उद्गम, जापान की अन्य सांस्कृतिक निधियों की तरह, बुद्ध मंदिरों में हुआ। वहाँ बुद्ध-मुनियों के पास ताज़े फूलों को बड़े ही सुंदर ढंग से संजोकर रख दिया जाता था। 17वीं और 18वीं सदी में चित्रकारों ने इन सजे हुए फूलों को अपने चित्रों में प्रदर्शित करना शुरू कर दिया। आजकल ईकेबाना की अनेक शैलियाँ और स्कूल हैं। इन सब स्कूलों का उद्देश्य फूलों को सजाकर एक ऐसे सौंदर्य का सृजन करना है ताकि फूलों के पौधों की चेतना का आभास मिले, जैसे फूलों को त्रिकोण आकृति में सजाना। इसमें फूलों की टहनियाँ अलग-अलग लंबाई की होती हैं। सबसे लंबी आकाश का प्रतीक, बीच वाली मनुष्य और सबसे छोटी पृथ्वी का प्रतीक समझी जाती है। इसमें कम-से-कम टहनियों या शाखाओं का संयोग किया जाता है। ये हमेशा विषम यानी तीन-पाँच या सात की गिनती में होती हैं। इनमें समरूपता को नहीं वरन् सामंजस्य को पाने का प्रयत्न किया जाता है। ईकेबाना कला के लिये तरह-तरह के फूलदानों का प्रयोग होता है। कुछ लंबे, कुछ बीच में चिपटे, कुछ अंगूठियों की तरह गोल और कुछ फूलों को साधने के खूंटे जैसे होते हैं। बहुधा कलियों और फूलों की पत्तियों को फूलों से अधिक पसंद किया जाता है। पहले उन टहनियों को बहुत संभालकर काटा जाता है। कभी-कभी दो या तीन तरह के फूल एक या दो गुलदस्ते में ही साथ-साथ लगाये जाते हैं। गुलदस्तों को मेज़ या अलमारियों पर नहीं रखा जाता, जैसी प्रथा भारत में है, वरन् उनको कमरे के कोने में रखा जाता है जहाँ वे अपने एकाकी सौंदर्य से कमरे के अंदर आने वाले लोगों का ध्यान आकर्षित कर सकें। फूलों का गुलदस्ता वास्तव में एक मधुर संगीत है, एक मोहक कलाकृति! जापानी अतिथि किसी के घर जाने पर पहले ईकेबाना के गुलदस्ते को देखते-सराहते और झुककर उसका आदर करते हैं। उसके बाद घर के स्वामी का अभिवादन करते हैं।

बेनसाई के वामन-वृक्ष लंबे या चपटे गुलदस्ते में रखे जाते हैं। यह पेड़ करीब एक फुट ऊँचा होता है। वामन-वृक्ष जापानियों की विशेष प्रथा है। वे विशालकाय पेड़ों को इस तरह लगाते हैं कि ऊँचाई रुक जाती है। ये वामन-वृक्ष कमरों की शोभा बन जाते हैं। प्रकृति के सौंदर्य के ये सूक्ष्म प्रदर्शन उसकी अनंत शोभा के प्रतीक और कलाकृति के रूप होते हैं।

जापान में पत्थरों को सुंदरता का प्रतीक माना जाता है। उनका भारीपन उनकी टेढ़ी-मेढ़ी आकृति, स्पर्श-भिन्नता, उनके टकराने से निकलती हुई तरह-तरह

की आवाज़ें, इन सब बातों का जापानियों ने बड़ा सूक्ष्म अध्ययन किया है। वामन वृक्षों के बीच पत्थरों को सजाकर रखने में जापानियों को विशेष आनंद मिलता है। जापान में ऐसी बहुत-सी दूकानें हैं, जहाँ केवल पत्थरों का ही क्रय-विक्रय होता है। पत्थरों की कीमत कुछ सौ येनों से लेकर कई लाख येनों तक होती है।

ओसाका के आस-पास

तोक्यो जापान की राजधानी, क्योतो उसके इतिहास का अनूठा संग्रहालय, निगोया औद्योगिक नगर तथा ओसाका वाणिज्य का केंद्र है। तोक्यो और ओसाका के बीच के क्षेत्र को 'तुकेदो' अर्थात् पूर्वी-तट-प्रवेश कहते हैं। जापान की आधे से ज्यादा आबादी इसी क्षेत्र में है और करीब 70 प्रतिशत उद्योग-धंधे भी हैं। तोक्यो और ओसाका के बीच चलने वाली रेलों की गति संसार में सबसे तेज़ है और ये विज्ञान तथा इंजीनियरी के चरम विकास की प्रतीक मानी जाती हैं। इस दोहरी लाइन पर हर रोज़ 112 सवारी गाड़ियाँ आती-जाती हैं। इनमें 'हिकारी' नाम की गाड़ी सबसे अधिक गति से चलती है। 210 किलोमीटर प्रति घंटा की गति से 515 किलोमीटर का रास्ता यह केवल तीन घंटे में तय करती है। इस पर चलने वाली गाड़ियाँ स्वचालित हैं। इनकी गति पर नियंत्रण तोक्यो स्थित नियंत्रण-कक्ष से इलेक्ट्रानिक द्वारा किया जाता है। यह समूची लाइन धरातल से ऊँचे तल पर बिछी है, ताकि सड़कों के 'लेवल-क्रासिंग' के कारण उसकी गति को कम न करना पड़े। भूकंप के समय इन गाड़ियों में बिजली का करेंट अपने आप रुक जाता है, इससे दुर्घटना की आशंका नहीं रहती। इस पर लगे सिगनलों की व्यवस्था ऐसी है कि यदि गाड़ी लाल सिगनल को पार करे तो ब्रेक अपने आप लगकर उसे रोक देते हैं।

इस गाड़ी के अन्दर दो श्रेणियाँ होती हैं, पहली और दूसरी। इनकी गद्देदार कुर्सियों पर बैठना अत्यंत आरामदेह और सुरुचिपूर्ण होता है। साथ में भोजनागार की गाड़ी भी चलती है जिसमें खाने-पीने की चीज़ें इच्छानुसार मिल सकती हैं। इस गाड़ी में एक और विशेषता है कि इसमें टेलीफोन करने की भी व्यवस्था है। आप रास्ते के किसी भी नगर से नंबर मिलाकर सीधे बात कर सकते हैं। इस लाइन के तकनीकी पहलुओं को देखने और समझने के लिये संसार के सभी देशों से विशेषज्ञ आते हैं। मैंने इस गाड़ी के ड्राइवर के साथ इंजन में यात्रा की। 210 किलोमीटर प्रति घंटे की गति पर भी इसमें विशेष थरथराहट नहीं होती। मैंने उसमें चाय पी, एक बूंद भी नीचे नहीं गिरी। चलती गाड़ी में ड्राइवर, अन्य लोगों और दृश्यों की जो तस्वीरें खींची वे भी बहुत स्पष्ट आईं।

तोक्यो सेंट्रल स्टेशन से चलने के बाद 'हिकारी' क़रीब घंटे भर तक घनी

बस्तियों के बीच में से ही गुजरती है। दोनों ओर बहुमंजिले मकान और उनके ऊपर नियोन-साइन या रंग-बिरंगे साइन बोर्ड। उसके बाद कंकरीट और लोहे के मकानों के अनुपात में लकड़ी और बांस के मकान अधिक दिखाई पड़ने लगते हैं। बीच-बीच में कारखानों की चिमनियाँ या गोदामों के प्रांगण दीखते हैं। धीरे-धीरे बस्ती की घनता कम होने लगती है और जापान की ग्राम्य-छटा मिलने लगती है।

चारों ओर हरे-भरे पेड़-पौधों से हरा-भरा पर्वत-मालाओं का प्रदेश; दूर तक फैली लगभग एक-सी ही ऊँचाई की पहाड़ियाँ; उनके ऊपर उगे अनेक अंशों के कोण बनाते हुए भांति-भांति के लंबे पेड़। कहीं-कहीं पहाड़ियों की चोटियों को चौरस बनाकर छोटी-छोटी क्यारियाँ बना दी गई हैं। उन पर बंदगोभी, धान और घास के पौधे उगते हैं। इन खेतों के बीच कहीं-कहीं बांस की चटाई का टोप पहने जापानी किसान दिखाई पड़ते हैं। खेतों की सुदूर पृष्ठभूमि में छोटे-छोटे साफ-सुथरे लकड़ी के मकान हैं। उनके ऊपर रेडियो और टेलीविजन के एरियल लगे हैं। उनके बाहर धुले कपड़े लटक रहे हैं। कहीं-कही छोटे बच्चे खेल में मस्त हैं। नगर-सीमा के निकट आते ही फिर वे ही ऊँची-ऊँची अट्टालिकायें, नियोन की बिजलियाँ, रंगीन साइन-बोर्ड आदि दिखाई देने लगते हैं। तोक्यो का लघु प्रतिरूप फिर आँखों के सामने आ जाता है। जापान के नगरो में विभिन्नता के लिये कदाचित् कोई स्थान नही है। हर नगर को तोक्यो के सांचे में ढालने की कोशिश की गई है। अंतर प्रकार का नही, केवल आकार का है।

पवन की गति से भी तेज चलने वाली 'हिकारी' गाड़ी कहीं-कहीं समुद्र के तट को छूती-सी जाती है; कहीं नदियों और नालों को पार करती है; कहीं राष्ट्रीय सड़कों के ऊपर होकर गुजरती है और कही ऊँचे पहाड़ों के भीतर लंबी गुफाओं में से आगे बढ़ती है। 515 मील की पूरी लाइन पर सुरंगें हैं।

इस गाड़ी में यात्रा करते समय मेरे जापानी साथी ने अपूर्व उत्तेजना के साथ मेरा ध्यान क्षितिज की ओर आकर्षित किया। सूर्य की किरणों में चमकती एक शुण्डाकार श्वेत रूप-रेखा मुझे दिखलाई दी। तभी तीन-चार आवाजें एक साथ निकलीं, 'फूजीसान' अर्थात् फूजीयामा का विश्वविख्यात शिखर! फूजीसान के समानांतर, एक लंबी झील है, जिसमें इस शिखर का सुंदर प्रतिबिंब चमकता रहता है। लगता है, फूजीयामा-शिखर अपनी सुंदरता पर स्वयं रीझ कर एक स्त्री की भांति अपनी छवि को विविध कोणों से झील के दर्पण में देखना चाहता है। हजारों नर-नारी देश और विदेश से नित्य ही फूजीयामा की अकथनीय शोभा देखने आते हैं। इसीलिये फूजीयामा किमोनो के समान जापान के राष्ट्रीय प्रतीक के रूप मे सारे संसार में विख्यात है।

जापान की राष्ट्रीय रेलवे का अतिथि होने के कारण मुझे रेलों के तकनीकी पहलू से परिचित कराने के लिये यहाँ की रेलवे का एक उच्च अधिकारी मेरे साथ था। उसके साथ इंजन में काफी देर सफर करने के बाद हम दोनों फ़र्स्ट-क्लास के डिब्बे में आकर बैठ गये। डिब्बे में दो क़तारें थी। हर कतार में दो-दो कुर्सियों वाली गद्देदार बेंचें थीं। मेरे बाईं ओर सामने वाली कतार में एक तरुण जापानी स्त्री और उसकी साल भर की लड़की बैठी थी। लड़की काफी नटखट थी। वह कभी अपनी माँ के कान-नाक और बालों से खिलवाड़ करती और कभी कूद कर उसकी गोद में चली जाती। तरह-तरह से मुँह बनाती और फिर खिलखिलाकर हँस देती। मैं उसकी ओर एकटक देखने लगा। मेरी निगाहों से निगाहें मिलने पर वह कुछ शर्माई और अपनी माँ की ओर सिमट गई। ज्योंही मैं उसकी ओर से निगाह फेरता वह फिर मेरी ओर देखने लगती। देर तक इसी तरह आँख-मिचौनी करने के बाद उसकी झिझक कम हुई। मैंने जेब से चाकलेट निकाल कर उसकी तरफ बढ़ाया। वह फिर अपनी माँ की बग़ल में चिपक गई। थोड़ी देर बाद उसने फिर मेरी ओर देखा और जब चाकलेट को फिर अपनी ओर बढ़ा हुआ देखा तो आँखों ही आँखों में अपनी माँ की अनुमति माँगी। मैंने उसकी माँ से कहा कि आप इसे चाकलेट लेने के लिये कह दीजिये। उसकी माँ ने जापानी में अपनी बेटी से कुछ कहा। उस बच्ची ने मेरी आँखों से आँखें न मिलाते हुए अपना हाथ बढ़ाया। मैंने उसके नन्हें हाथ में चाकलेट दे दिया।

अब वह आश्वस्त हो चुकी थी। उसने मेरी ओर देखकर मुँह बनाने शुरू किये। जब मैं उससे निगाह मिलाता तो वह किलककर हँस देती थी। बड़ी भोली और प्यारी लग रही थी वह बच्ची। मैंने चाहा कि उसकी तस्वीर खींच लूँ। मैंने उसकी ओर कैमरा किया तो उसने मुझे अपने हाथ का अँगूठा दिखलाया और मुँह मोड़ लिया। मुझे फिर उसकी माँ से अपील करनी पड़ी कि मैं उसकी तस्वीर खींचना चाहता हूँ। वह शायद अँग्रेज़ी नहीं समझती थी, इसलिये मेरे जापानी मित्र ने उसको मेरा मंतव्य समझाया। माँ मुस्कराई और उसने बेटी को अपनी कुर्सी के हत्थे पर बिठाते हुए कैमरे की ओर इशारा किया। बेटी मुस्कराई और मैंने माँ की पृष्ठभूमि पर उसकी तस्वीर खींच ली।

अब वह मुझसे काफी हिल-मिल गई थी। मैंने उसे अपनी गोद में लेना चाहा पर मेरी भाषा को न समझने के कारण उसने आना अस्वीकार कर दिया। माँ के पास बैठकर बड़ी भाव-भंगिमा से मेरा मन-बहलाव करती रही। हृदय की भाषा स्वरों और शब्दों के परे होती है।

थोड़ी देर बाद क्योटो पहुँचने पर जब गाड़ी की गति कम हुई तो उन महिला ने उतरने के लिये अपना सामान ठीक करना शुरू किया। वह विदेशी वेश-भूषा में थी। अभी तक मैं यही समझ रहा था कि उसके साथ कोई पुरुष नहीं है लेकिन

जब वह बयोतो में उतरी तो अधेड़ उम्र का एक पुरुष उसके पीछे-पीछे चलने लगा। उसकी अवस्था निस्संदेह उससे 10-15 साल अधिक रही होगी। मजे की बात तो यह थी कि जापानी महाशय हाथ में केवल छाता और बैग लिये थे। पेटी-सूटकेस आदि को नीचे उतारने का काम महिला ही कर रही थी। इस समय उसकी मुस्कान गंभीरता में बदल गई थी। मुख पर एक अजीब-सी उदासी का भाव छा गया था। बादलों की छाया पड़ते ही जैसे चंद्रमा की मादक उज्ज्वल ज्योत्सना अपना उल्लास समेट कर धुंधले प्रकाश में बदल जाती है, वैसे ही उस अधेड़ पुरुष के आ जाने पर उस रमणी का रंग बदल गया। वे लोग प्लेटफार्म पर उतरे। मैं उन्हीं की ओर देख रहा था। उन्हें लेने के लिये एक-दो जापानी सज्जन आये थे। उनसे बात करते हुए भी महिला की मुद्रा में वही गंभीरता का भाव था। लड़की प्लेटफ़ार्म पर और भी अधिक फुदक रही थी। ये लोग आगे की ओर बढ़े और मेरी गाड़ी दूसरी दिशा में चल दी। किंतु मेरी निगाह उन लोगों पर ही लगी रही। थोड़ी दूर चलने के बाद उस स्त्री ने पीछे की ओर मुड़कर देखा और फिर उसके मुख पर एक हल्की मुस्कान खेल गई। हम दोनों के बीच की दूरी बढ़ती गई। कुछ ही क्षणों में हम एक-दूसरे से सदा के लिये बिछुड़ गये। किन्तु मोनालिसा जैसी वह रहस्यमयी मोहक मुस्कान, वह उदास चेहरा और उसकी नटखट लाडली—यह तस्वीर सदा ही हृदय-पटल पर छाई रहेगी।

नयी तुकैदो लाइन के दूसरे छोर पर स्थित ओसाका पर गत महायुद्ध में अंधाधुंध बमबारी हुई थी। किन्तु अगले 10-15 सालों में ही एक नये सुन्दर नगर का पुनः निर्माण हो गया है। आजकल यहाँ की आबादी 30-35 लाख है। यह दिल्ली की आबादी के बराबर है। उसकी ऊँची-ऊँची इमारतें, बस्तियों के बीच से गुजरती हुई नहरें, उन पर बने 1700 पुल, शीशे की छतों वाली सड़कों के दोनों ओर सामान से भरी हुई दुकानें, भूमि के नीचे मीलों तक फैले सुरंगें, जापान की भूमिगत सर्वोत्तम रेलें, रंगों की दीवाली, मनोविनोद के सुलभ साधन और वातावरण में धन और वैभव की सोंधी महक ओसाका की विशेषताएँ हैं। यहाँ पर भारतीयों की कई बस्तियां हैं। इनमें पश्चिमी भारत के बहुत से लोग कपड़े की धुलाई और इसके आयात-निर्यात का धंधा करते हैं। इसीलिए यहाँ कॉफी हाउस, चाय रेस्तरां, चांदी बेंक के बोर्ड दिखाई पड़ते हैं।

प्राचीन नगर होते हुए भी ओसाका की परम्पराएं प्राचीन नहीं हैं। जापान के मध्य-युग के महान शोगुन हिदेयोशी का किला ही आधुनिक ओसाका की अस्पष्ट ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। इस किले की निर्माण कला और इसके पांच मंजिले बुर्जों के बड़े कोठरियों के अस्त्र-शस्त्र, मोहरें और चित्र आदि, किसी संग्रहालय में रखी पुरानी चीजों से अधिक कौतूहल उत्पन्न नहीं कर पाते। वास्तव में ओसाका व्यापार और कारखानों का नगर है। यहाँ वह सब कुछ है जो नगर

के किसी भी आधुनिक व्यापारिक नगर में मिल सकता है। जापानी व्यवसाय केवल एक बात में अपने समुराई (सामत) पुरखों की परंपरा को क़ायम किये हुए है—अपने कारखानों में काम करने वाले श्रम-जीवियों से व्यक्तिगत सम्बन्ध बनाए रखना। इसके बदले उन्हें उनसे वफ़ादारी, मेहनत और अधिक मुनाफ़ा मिलता है। रोज़ काम शुरू होने के पहिले सब मिल कर गाते हैं—

'सदा सच्चे, प्रसन्न, साफ़ और उदार रहो।
दूसरों के साथ प्यार से रहो।
शिष्ट और विश्वासपात्र बनो।
कठोर परिश्रम से अपने को सुधारो।
अनुकूल और सहनशील बनो।
आभारी हो, अनुकंपा का उत्तर दो।'
'नये जापान को बनाने के लिये,
अपने प्रयत्नों, अपने दिलों को एक कर लो,
सदैव बढ़ते उत्पादन के लिए,
अपने काम को प्यार करो, उस पर सब कुछ न्योछावर करो,
संसार के लोगों को हम अपना माल भेजें,
हमारा उत्पादन अंत न होने वाली ऐसी धारा हो,
जिसका पानी अनवरत वेग से बहता है,
उद्योग बढ़ाओ, बढ़ाओ, बढ़ाओ।'

जापान की सामंती आचार-संहिता और पूँजीवादी व्यवस्था से अधिकतम लाभांश कमाने की कामना का यह कितना सहज सामंजस्य है।

वैभव की चमक-दमक और महक ओसाका में चारों ओर छायी रहती है। यहाँ के लोगों के व्यवहार में मुझे वैसी सरलता देखने को नहीं मिली जैसी तोक्यो निवासियों में है। ऐसा लगता है कि यहाँ के स्त्री-पुरुष पैसा कमाने और उसे लुटाने में इतने व्यस्त हैं कि उन्हें दूसरी बातों के लिए समय ही नहीं है, विशेषकर विदेशियों से मिलने-जुलने को। ओसाका के एक विख्यात शराबघर का नाम 'क्राउन-बार' है। उसकी ऊँची मीनार पर नियोन रोशनी में चमकते उसके नाम को दूर से देखा जा सकता है। उसके बाहर बड़े-बड़े अक्षरों में एक साइन-बोर्ड लगा है। मैंने अपने जापानी साथी से उसे पढ़ने को कहा तो उसने जो बताया उसे सुन कर मैं स्तब्ध रह गया। बोर्ड पर कुछ इस आशय का नोटिस था—

> 'हमें सुंदर युवतियों की सेवा की आवश्यकता है? यदि आप सुंदर हैं और काम करने के लिये तैयार हैं तो आपको एक शाम के लिये 500 येन मिल सकते हैं। इसके अतिरिक्त यदि आप अभ्यागतों को प्रसन्न करके अधिक येन कमा सकें तो उनमें से आधे आप अपने पास रख

सकती हैं। विशेष सुंदर या आकर्षक होने पर आपको एक हज़ार से 15 सौ-येन तक एक शाम के लिए मिल सकते हैं। आप इस बारे में मैनेजर से मिलें।'

अपने कौतूहल को मिटाने के लिए जब मैंने इस स्थान के बारे में अधिक जानने की कोशिश की तो पता चला कि उसके अंदर जाने का प्रवेश-शुल्क आठ-सौ येन है। वहाँ आप अपनी चुनी हुई किसी लड़की को साथी बना सकते हैं, जो आपके प्याले में आपकी मन-चाही शराब उंड़ेलेगी, आपका आतिथ्य करेगी और यदि आप ज़ोर देंगे तो हलकी शराब या अन्य पेय में आपका साथ भी देगी। यदि आप जापानी भाषा जानते हैं तो वार्त्तालाप से आपका मन बहलायेगी। यदि अँग्रेज़ी भाषा जानने वाली साथिन मिल जाय तो और भी अच्छा। पर उसके साथ बातचीत टूटी-फूटी और असंगत ही होगी क्योंकि भाषा पर उन लोगों का अच्छा अधिकार नहीं होता। बहुत से जापानी वहाँ जाकर अपने धन और मन की गर्मी बुझाते हैं। कुछ तो मदिरा के प्रभाव में अपने होश ही खो बैठते हैं। ऐसी हालत में सुन्दर और सहृदय साथिन बड़े धैर्य और समझदारी से अपने अतिथि को टैक्सी से उनके घर पहुँचाने का प्रबन्ध कर देगी। ऐसे समय उनके चेहरे पर व्यंग्य या हँसी का भाव न होकर सच्ची संवेदना का भाव होगा। उनके साथ किंचित् अशिष्टता की भी छूट है। आगे आपकी योग्यता और पैसों पर निर्भर है कि आप शराब-घर बन्द होने के बाद साथिन को अपने साथ चलने के लिए राज़ी कर लें। येन के बड़े नोटों से सब कुछ ख़रीदा जा सकता है।

ओसाका में नग्न-नृत्य बहुत मशहूर है। वैसे तो नग्न-नृत्यशालाओं की तोक्यो में कमी नहीं है और नगर के बाहर की आबादी में पूर्ण नग्न-नृत्य देखे जा सकते हैं, किन्तु ओसाका में बाज़ार में स्थित हालों में भी नग्न-नृत्य देखने को मिल सकते हैं। यहाँ की सबसे विख्यात नृत्यशाला ओ० एस० म्यूज़िक हाल है। इसका प्रवेश-टिकट 300 येन है। छोटा-सा हाल, जिसमें अंधेरा-सा रहता है। बीच की सीटें रिज़र्व रहती हैं। और आस-पास की सीटों पर आप जहाँ चाहें बैठ सकते हैं। सब नृत्य किसी कहानी में पिरो कर पेश किये जाते हैं। कथोपकथन में मज़ाक और ठहाकों की भरमार रहती है। अश्लील और अभद्र उक्तियाँ भी आ जाती हैं। इससे दर्शकों का खूब मनोरंजन होता है। दर्शक प्रायः पुरुष होते हैं। किन्तु कभी-कभी इक्की-दुक्की स्त्रियाँ भी दिखाई दे जाती हैं। पात्रों का आवरण बहुत झीना होता है। अपने किमोनो और अंगी स्टेज पर उतारती हैं। वे बहुधा नीचे-ऊपर एक-के ऊपर एक पहने रहती हैं जो क्रमशः छोटे, पतले और झीने रेशम के बने होते हैं। उनके शरीर की नग्नता उत्सुकता बढ़ाती हुई अधिक स्पष्ट होती जाती है। अन्त में स्टेज पर पूर्णतः निरावरण हो जाती हैं। केवल कटि प्रदेश पर छोटा-सा कपड़ा रेशम की पेटी के सहारे लटका रहता है। नृत्य की

मुद्रायें ऐसी होती हैं जिनसे उनके अंग-प्रत्यंग को दर्शक भली-भाँति देख सकते हैं। जाँघे थिरकाना, पैरों को नचाना और उरोजों को कँपाना इन नृत्यों की विशेषताएं हैं। इन नृत्यों की स्टेज का एक पतला सा-कोना दर्शकों के बीच में आगे की ओर निकला रहता है। इस पर लेट कर नर्तकी अपनी जाँघें फैला देती है और दर्शकों का मन ललचाती है। बहुत से दर्शक स्टेज के पास जाकर झुक जाते हैं और अपनी अशान उत्सुकता का प्रदर्शन करते हैं। बीच-बीच में मनचले दर्शक इन नर्तकियों पर फब्तियाँ भी कसते हैं। वे उन्हें जवाब भी देती हैं। कभी-कभी दर्शक उनकी ओर सिग्रेट बढ़ा देते हैं। वे एक कश लेकर धुआं उनके मुँह पर छोड़ देती हैं और सिगरेट वापस कर देती हैं।

जापानी दर्शक जापानी स्त्रियों के अर्ध-विकसित शरीर की ओर उतने आकृष्ट नहीं होते, जितने पश्चिमी देशों की स्त्रियों के पूर्ण विकसित शरीर की ओर। इस-लिये नग्न-नृत्यों में दो या तीन सीन ऐसे होते हैं जिनमें पश्चिमी वेष-धारिणी उरोजमयी कामिनियाँ अपने वस्त्र दर्शकों के सामने उतारती हैं, और अपनी जांघो, नितंबों और स्तनों को बड़े ही मादक ढंग से हिला कर दर्शकों के मन में वासना की लहर दौड़ाने लगती हैं। यही नग्न-नृत्यों का चरम आकर्षण है।

नग्न-नृत्यों में भाग लेने वाली नर्तकियों के नग्न-चित्र थियेटर के बाहर खुले आम बिकते हैं। जापान में कामुकता और उसके उद्दीपक स्थानों को जीवन का उतना ही अनिवार्य अंग मान लिया गया है जितना भूख और प्यास मिटाने के स्थानों को। इसलिये इन नृत्यों में जाने और उनका आनन्द लेने में वे लज्जा या संकोच अनुभव नहीं करते। वास्तव में जापानी संस्कृति में नग्नता का कोई महत्त्व नहीं है। स्नान के समय स्त्री और पुरुष पूर्ण रूप से नंगे हो जाते हैं और एक ही कुण्ड में साथ-साथ नहाते हैं। इस तरह के स्नान-कुण्ड तोक्यो और ओसाका में कम मिलते हैं, किंतु जापान के भीतरी भागों में अब भी नर-नारी मिल-जुल कर स्नान-कुण्डों में नग्न-स्नान करते हैं।

गुड़ियों को कठपुतलियों की तरह नचाने की कला का भी जापान में अच्छा विकास हुआ है। कठपुतली के नाच को 'बुनराकु' कहते हैं। इसका सबसे सफल प्रदर्शन ओसाका में होता है। काले वस्त्र पहिने एक आदमी इन गुड़ियों को अपने हाथों से इस तरह हिलाता है कि वे बात करती हुई सी लगती हैं। तीन गुड़ियों को एक साथ नचाने वाले भी होते हैं। ये लोग गुड़ियों के हाथ, पैर, सिर आदि इस खूबसूरती से हिलाते हैं कि उनके हाव-भाव देखते ही बनते हैं। गुड़ियों को नचाने वाले को काफी समय तक अभ्यास करना पड़ता है। इस कला को सीखने के लिये लगभग 10 साल लग जाते हैं। गुड़ियों के नाच के साथ एक गाना भी होता है, जिसे 'जोरूरी' कहते हैं। 'बुनराकु' गुड़ियों को बनाने में एक विशिष्ट कला का प्रयोग होता है। इनकी आँखों की पुतलियाँ, भवें, होंठ, मुँह,

कान हिलाये-डुलाये जा सकते हैं। भारत में होने वाले कठपुतलियों के नाच से यह सर्वथा भिन्न है।

ओसाका से 25 किलोमीटर दूर एक प्राइवेट रेल कंपनी ने मनोरंजन का एक अनोखा स्थान बनाया है। इस स्थान को 'ताकाराज़ुका' कहते हैं। संभवतः यह पूर्व में सबसे बड़ा और विचित्र आनंद-स्थल है। यहाँ पर एक विशाल थियेटर है। उसमें चार-हज़ार दर्शक आसानी से बैठकर प्राचीन नोह, मध्य-कालीन काबुकी, आधुनिक लोक-नृत्य और पश्चिमी नृत्य साथ-साथ देख सकते हैं। रंग-मंच की साज-सज्जा अनूठी और प्रदर्शन सौष्ठव अद्‌भुत है। जापानी संगीत अथवा पश्चिमी लय में बंधे जापानी स्वर बड़े कर्णप्रिय होते हैं। इस थियेटर में भाग लेने वाली चार सौ लड़कियाँ हैं। इनके अतिरिक्त सौ व्यक्ति गाने, नाच सिखाने, दृश्य-सज्जा करने और आरकेस्ट्रा बजाने का काम करते हैं। थियेटर में प्रकाश करने का ढंग भी निराला है, इलेक्ट्रोनिक बत्तियों की सहायता से पहाड़, पानी, चंद्रमा और सूर्य का आभास दिया जाता है। ऐसी ही प्रकाश व्यवस्था जापान की सभी बड़ी-बड़ी नाट्यशालाओं में की गई है। इस थियेटर की ख्याति संसार भर में फैली हुई है। जापान आने वाले प्रायः सभी सैलानी इसे देखे बिना नहीं लौटते। यहाँ के नर्तक अनेक पश्चिमी देशों में अपने प्रदर्शन कर चुके हैं।

नृत्यशाला के बाहर चाय-घर और रेस्तराँ आदि हैं। एक ओर चिड़ियाघर है। यहाँ के सर्कस अत्यंत आकर्षक होते हैं। दूसरी ओर एक उद्यान है। जिसमें तरह-तरह के फूल-पौधे और पेड़ विदेशों से मँगवा कर लगाये गये हैं। यहीं एक परियों का देश है, जो अमरीका के वाल्ट डिस्ने की फेरीलैंड की याद दिलाता है। यहाँ की कृत्रिम झीलों में मोटर-बोट द्वारा सैर की जा सकती है। एक पहाड़ी से दूसरी पहाड़ी पर जाने के लिये हवाई गाड़ियाँ हैं, जो लोहे की रस्सियों पर लटकी हुई चलती हैं। तैरने और घोड़े की सवारी की सुविधा है। तरह-तरह के आनंद, विनोद और कुतूहल के साधन भी उपलब्ध हैं। स्पेस-राकेट और आधुनिक विकास की अन्य सामग्री यहाँ देखी जा सकती है। ठहरने के लिये सस्ते होटल हैं।

ताकाराज़ुका में गंधक मिले गरम पानी का झरना है। उसके पानी को लेकर स्नान-कुण्डों का विस्तृत जाल बिछाया गया है। इन कुण्डों में नग्न-स्नान का भी प्रबंध है। टिकट खरीद लें। कपड़े उतार अलमारी में रख दें। अलमारी की चाबी हाथ में घड़ी की तरह बाँध लें। फिर एक बंद कमरे में प्रवेश करें। इसके बीच में दो जलकुण्ड हैं। दीवारों पर चारों ओर गर्म और ठण्डे पानी के नल अनेक हैं। पहले नल के पास लकड़ी की छोटी तिपाई पर बैठ जाइये और अपनी इच्छानुसार गरम-ठण्डे पानी को मिलाकर साबुन से अपनी देह साफ़ कर लीजिये। बाद में जलकुण्ड में प्रवेश कीजिये।

अधिकतर नहाने वाले हाथ में एक छोटा-सा तौलिया रखते हैं। कुछ अपने शरीर के अग्रभाग को इस तौलिये से ढँक लेते हैं तथापि नग्नता के बारे में सभी पूर्णतः उदासीन रहते हैं। कुण्ड का पानी बहुत गरम होता है। जापानी लोग इस गरम पानी के इतने अभ्यस्त हैं कि पानी के अंदर जाने में उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं होती। कुण्ड के किनारे बैठकर पहले वे अपने पैर पानी में डालते हैं। फिर धीरे-धीरे शेष शरीर को। कुण्ड में एक ओर से पानी आता है, दूसरी ओर निकल जाता है। शरीर और नसों में एक सुखद सरसराहट होती है और महीनों की थकावट मिनटों में मिट जाती है। इस स्नान के बाद नई स्फूर्ति मिलती है। नहाने में 10 या 45 मिनट का समय लग जाता है। नहाने के बाद चाहें तो फिर गरम या ठण्डे पानी के नलों में नहा सकते हैं। शरीर को पोंछने के बाद चाहें तो जापानी ढँग से मालिश करा सकते हैं। यहाँ मालिश का तरीका भारत में भिन्न है। मालिश तेल से नहीं, शरीर की नसों को दबाकर थकावट निकालने के लिये की जाती है। मालिश कराने के लिये बड़े-बड़े कमरे हैं। इनमें कपड़े उतरवा कर एक 'याकता' (गाउन) पहना दिया जाता है। फिर फर्श पर बिछी तातामी (एक तरह की शीतल-पट्टी) पर लेट जाना पड़ता है। मालिश करने वाले पुरुष और स्त्रियाँ दोनों होते हैं। ये सुचारु ढँग से शरीर की नसों को इस तरह दबाते हैं ताकि इनमें वेग से रक्त-संचार होने लगे और थकावट दूर हो। मालिश कराते समय कभी-कभी नींद आने लगती है। मालिश में कम-से-कम 45 मिनट का समय लग जाता है।

ताकाराज़ुका तक जाने वाली प्राइवेट रेलवे लाइन के दोनों ओर बस्तियाँ हैं। यहाँ किराये के मकान मिलते हैं या कम दामों में बिकते हैं। ताकाराज़ुका आने-जाने वाले लोगों के अतिरिक्त रेल के किनारे की बस्तियों में रहने वाले लोग भी रेल से सफर करते हैं और यातायात की माँग बनी रहती है। ताकाराज़ुका व्यवसाय और विनोद के लाभप्रद समन्वय की सजीव और सफल कल्पना है।

क्योतो

•

क्योतो जापान की सांस्कृतिक राजधानी है। यदि दिल्ली, आगरा, मथुरा और वाराणसी को मिलाकर एक महानगर बन जाए, तो क्योतो के सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्व को पा सकेगा। लगभग ग्यारह-सौ वर्ष तक, सन् 794 से 1868 ई० तक, क्योतो जापान की राजधानी रहा है। तेरह लाख की आबादी वाले इस नगर में पंद्रह सौ बुद्ध-मंदिर और दो-सौ से अधिक शिंतो पूजा-घर हैं। बुद्ध मंदिरों में 30 विभिन्न बौद्ध संप्रदायों के सर्वोच्च मठ हैं। यहां के उद्यान विश्व-विख्यात हैं। कमनीय गेईशाओं को उनके विशुद्ध-रूप में यहीं देखा जा सकता है। यहां के रेशमी कपड़े और कसीदाकारी बहुत प्रसिद्ध है। भोग-विलास और आनंद के प्रचुर साधन यहां उपलब्ध हैं। इस तरह क्योतो जापान के इतिहास, संस्कृति, दस्तकारी, कला, शिक्षा और मनोविनोद के बहुमुखी साधनों का प्रमुख केंद्र है।

क्योतो नगर के समीप पहुंचते ही नीले-हरे बांसों के बाग दिखाई देने लगते हैं। फिर कल-कल करते नदी-नालों की रेखाएं स्पष्ट होने लगती हैं। दूर क्षितिज पर देवदार के वनों से ढकी ऊंची पहाड़ियों की आड़ी-तिरछी रेखाएं दीखती हैं। क्योतो की सड़कें शतरंज की बिसात की तरह एक दूसरे को काटती हुई जाती हैं। कहते हैं कि सन 794 ई० में जब इस नगर की स्थापना हुई तो चीन की तत्कालीन राजधानी के आधार पर यहां की सड़कों और महलों का निर्माण हुआ था। इतिहास के उतार-चढ़ाव राजवंशों के उत्थान-पतन, मतांतरों की उत्पत्ति और ह्रास जन-जीवन में कलात्मक अभिरुचि के विकास और विभिन्न दस्तकारियों के प्रयत्न का इतिहास ही क्योतो की कहानी है। किमोनो पहने नर-नारी सबसे ज्यादा आज भी क्योतो में ही देखने को मिलते हैं। प्राचीन परंपरा के पुजारी यदि एक ओर तोक्यो और ओसाका में आधुनिक लिबासों में सजी जापानी भीड़ को देखकर झुंझला उठते हैं तो दूसरी ओर क्योतो-निवासियों के चमकते-दमकते, बेलों और पत्तियों से सजे किमोनो, पैरों में पहनी लकड़ी की खड़ाऊं तथा उनकी बातचीत का मनोज्ञपन देखकर तृप्ति की सांस लेते हैं।

जापान के इतिहास में वहां के सूर्यवंशी सम्राटों का प्रभुत्व अनादिकाल से

आज तक अटूट चला आ रहा है। तथापि वास्तविक राजसत्ता अधिकांश समय राज्यपालों के हाथ में ही रही। राज्यपालों को 'शोगून' कहते हैं। शोगून अपनी पुत्री या बहिन का विवाह राजकुमारों से कर दिया करते थे। इस तरह राजगद्दी पर दामाद, बहनोई या भांजे का आधिपत्य बना रहता था। संबंध और सैनिक बल पर आधारित शोगून वंशों का प्रभुत्व, षडयन्त्रों के कारण बनता-बिगड़ता रहता था। विजयी वंश के लोग परंपरागत साधनों से अपनी शक्ति बढ़ाते थे और वैभवजन्य दोषों और अवगुणों के कारण उसे खो देते थे। तथापि सभी वंशों के प्रमुख राज्यपालों ने क्योतो में अपना कोई-न-कोई स्मारक अवश्य छोड़ा है। यही कारण है कि क्योतो जापान के मध्यकालीन इतिहास में घुल-मिल गया है।

क्योतो की स्थापना 'हेईयन' नाम के शोगून ने की थी और लगभग चार साल तक उसके वंशज 'शोगून' पद पर रहकर राज्य-लक्ष्मी का भोग करते रहे। जापान में कला के विकास की दृष्टि से यह युग विशेष महत्त्व रखता है। चीन की संस्कृति, कला और साहित्य को अंगीकार कर तथा उन्हें जापानी जामा पहनाकर इस युग ने अनेक अत्यंत सुन्दर कलाकृतियों को जन्म दिया। सामंत और दरबारी सुख और वैभव का जीवन बिताते थे और दो गुटों में बटकर आपस में लड़ने-झगड़ने रहते थे। इनमें से एक का नेतृत्व 'मीना-मोतो' घराने के और दूसरे का 'तहरा' घराने के लोग करते थे। सन् 1192 में मीनामोतो वंश के नेता 'यामोतारो' ने राज्य पर अपना आधिपत्य कर तोक्यो के पास कामाकुरा नगर को अपनी शक्ति का नया केंद्र बनाया। क्योतो के ऐश-आराम के जीवन के विपरीत कामाकुरा का जीवन त्याग और बलिदान का प्रतीक बन गया। कामाकुरा युग 1333 ई० में समाप्त हो गया। उसके बाद 'आशिका' वंश के लोगों ने क्योतो में अपना प्रभुत्व जमा लिया। इस युग को 'मुरामाची' युग कहते हैं जो 1333 ई० से 1573 ई० तक रहा। इस युग में वैभव और विलास की तूती बोलने लगी। धर्म, कला, संगीत और साहित्य का बहुत विकास हुआ। 16 वीं शताब्दी के अंत में जापान में ईदोस्मी नाम के नेता ने विजय पाई। उसके वंशज इएयासु ने 'तोकूगावा' घराने के शोगूनों की सत्ता जमाई। इस युग में बहुत से किले और महल बनवाये गए। इसी समय यूरोपीय व्यापारी और मिशनरियों ने जापान में आना प्रारंभ किया। किन्तु उन लोगों की उच्छृंखलता से आतंकित होकर देश में विदेशियों का आना बंद कर दिया गया। करीब ढाई सौ साल तक जापान यूरोपीय प्रभावों से मुक्त रहा। अंत में 1868 ई० में अमरीकी नौसेना के दबाव के फलस्वरूप जापान के द्वार पश्चिमी देशों से सबके के लिये खुल गये। इससे तोकूगावा शोगूनों के वंश से राजसत्ता फिर सम्राट के हाथ में आ गई। उस समय के सम्राट मैजी, क्योतो

से राजधानी 'ईदो' में ले आये और उसका नाम तोक्यो अर्थात् पूर्व की राजधानी रखा। उन्होंने जापान को योरुप की वैज्ञानिक उन्नति के रास्ते पर चलाने का अथक प्रयत्न किया। उनके राज्यकाल में जापान ने अद्भुत विकास किया। फलस्वरूप वह संसार के बड़े राष्ट्रों की पंक्ति में पहुँच गया। उनके राज्य-काल को 'मेजी युग' कहते हैं। जापान के इतिहास में यह बड़ा शानदार युग माना जाता है और सम्राट मेजी आधुनिक जापान के निर्माता के रूप में पूजे जाते हैं। तोक्यो में स्थित उनकी समाधि जापानियों के लिये तीर्थ बन गई है।

जापान के इतिहास के चार युगों—हेईयान युग, कामाकूरा युग, मूरामाची युग और तोकूगावा युग में क्योतो देश के राजनीतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक युग का केन्द्र रहा। वहाँ असंख्य ऐतिहासिक अवशेष हैं। यदि क्योतो में चार बुद्ध-मंदिर और एक पूजाघर रोज़ देखा जाय तो वहाँ के सभी मंदिरों और पूजाघरों को देखने में एक साल से अधिक समय लग जाएगा। कुछ दिनों के आवास में इस महानगरी के प्रतिनिधि अवशेषों को ही देखा और सराहा जा सकता है।

वहाँ के बौद्ध-मंदिरों में 'किंकाकूजी' विश्व-विख्यात स्वर्ण मंदिर है। यह मंदिर नगर के पार गिरिमाला के प्रांगण में स्थित है। इसका प्रवेश द्वार देखने से लगता है कि किसी प्राचीन और सघन-वन में प्रवेश कर रहे हैं। सफेद बजरी से पटे रास्ते के दोनों ओर पत्थर के प्रकाश-स्तंभ हैं। रास्ते पर चलकर मंदिर के भीतर प्रवेश-द्वार पर पहुँच जाते हैं। छोटे-से दरवाजे और सँकरे रास्ते को पार कर एक सरोवर के पास पहुँचते हैं। सरोवर के एक कोने पर एक तीन-मंज़िला सुन्दर मंदिर दिखाई पड़ता है। पहाड़ों की गहरी हरी पृष्ठभूमि पर खड़ा यह स्वर्ण-मंदिर अंधेरी रात में चन्द्रमा के समान चमकता है। सरोवर में आंदोलित लहरों पर प्रतिबिंबित होकर उसके स्तंभ एक अनुपम दृश्य उपस्थित करते हैं। सरोवर के बीच में एक छोटा सा द्वीप है। उस पर देवदार के दो छोटे पेड़ हैं। कहते हैं, ये सूर्य और चंद्रमा की किरणों को बदलते हैं। स्वर्ण-मंदिर की मीनार-सी आकृति सरोवर में विविध रूपों में प्रतिबिंबित होती है। स्वर्ण-मंदिर का निर्माण सन् 1393 ई० में हुआ था। प्रारंभ में यह शोगून का महल था। बाद में इसे ज़ेन मत के बुद्ध-मंदिर में बदल दिया गया। वास्तव में यह स्वर्ण-मंदिर जापानी वास्तुकला का उत्कृष्ट नमूना है। यह मंदिर कई बार आग की लपट में आया किन्तु हर-बार इसका रूप निखरता रहा। 1950 में एक जापानी युवा-भिक्षु ने इस मंदिर में आग लगा दी थी। उसकी भावनाओं का मार्मिक चित्रण जापानी उपन्यासकार 'मोशीमा' ने अपने विख्यात उपन्यास 'स्वर्ण-मंदिर' में किया है। जापान की कला-उपासक बौद्ध जनता ने चंदा इकट्ठा कर फिर इस मंदिर का निर्माण करा डाला।

मनुष्य और प्रकृति के पारस्परिक संबंधों के महत्त्व को मान्यता देने की परंपरा एशियाई देशों में प्राचीनकाल से चली आ रही है। जापान के उद्यान इसी परंपरा के द्योतक हैं। कोई भी जापानी ऐसा घर बनाने की कल्पना नहीं कर सकता जिसमें फूल पेड़, पौधे न हों। प्रकृति का सामीप्य प्राप्त कर जापानियों को हार्दिक उल्लास होता है। उद्यान उनके लिए कभी-कभार सैर करने का स्थान नहीं, बल्कि जीवन का वैसा ही अभिन्न अंग है जैसा मकान।

जापानी बाग प्राकृतिक दृश्यों की प्रतिकृति मात्र नहीं होते। उद्यान-कला के शिल्पी, प्राकृतिक दृश्यों के आधार पर अपनी कल्पना से नए रंग-रूप और आकार के भूदृश्य (लैंडस्केप) निर्मित करते हैं जो प्राकृतिक दृश्यों की सुंदर छाया-से लगते हैं। इसके लिये प्रकृति के रूप के सूक्ष्मीकरण की आवश्यकता होती है, जो बागों में बनाए गए छोटे-छोटे पहाड़ों या पत्थर की अन्य रचनाओं में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। प्राकृतिक रूप का अनुकरण करते हुए भी कलाकार कृत्रिमता से बचना चाहते हैं। जापानी उद्यान-कला में प्राकृतिक दृश्यों से प्रेरणा लेने और प्राकृतिक वस्तुओं का प्रयोग करने के बावजूद इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि भूदृश्य ऋतुओं के अनुरूप हों।

जापान की लैंडस्केप उद्यानकला में पानी या रेत का विशेष महत्त्व है। टेढ़ी-मेढ़ी शाखाओं, झुके हुए तने के पेड़ों, विशेषकर देवदार का उपयोग किया जाता है। प्राकृतिक दृश्यावली का अनुकरण करने अथवा पहाड़ों, झरनों या द्वीपों का प्रतीकात्मक शैली में निर्माण करने के लिये अधिकतर पत्थरों और चट्टानों का उपयोग किया जाता है। जापानी बाग प्राकृतिक दृश्यावली की तुलना में छोटे होते हुए भी प्रकृति की संपन्नता के प्रतीक होते हैं। इनमें प्रायः हरे रंग का उपयोग किया जाता है क्योंकि इस रंग को प्रकृति का प्रतीक माना जाता है।

जापान की उद्यानकला में 'कारे सानसुई' (जल-रहित लैंडस्केप) शैली का विशेष महत्त्व है। इसके अनुसार प्राकृतिक दृश्यों का निर्माण करने के लिए केवल पत्थर और रेत को काम में लाया जाता है। बाह्य दृश्यावली का उपयोग बाग की प्राकृतिक भव्यता के लिए किया जाता है। इसे शाकेयी शैली (ऋणी-दृश्यावली) कहते हैं। इस शैली का सर्वोत्कृष्ट नमूना क्योतो में स्थित रियोन-जी का उद्यान है। कला मर्मज्ञों की राय में यह संसार का सर्वोत्तम उद्यान है। इसकी विशेषता यह है कि बिना फूल, पौधों और पानी के भी यह उद्यान कहलाता है। इसमें जाने के लिए जूते बाहर के कमरे में उतार देने होंगे। दो छोटे-छोटे कमरों की दीवारों पर चित्रकारियां बनी हैं। जमीन पर चटाई बिछी है। आंगन के चारों ओर मिट्टी की 10-12 फुट ऊंची-ऊंची दीवारें हैं, जिन पर खपरैल है।

रियोनजी के मंदिर में आराधना-कक्ष के सामने बालू का बगीचा है। इस बगीचे का दायरा टेनिस-कोर्ट के बराबर है। यहां सफेद बारीक-बारीक बजरी

पर अलग-अलग आकार-प्रकार के पत्थर [illegible] बेतरतीब हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ कोई पेड़-पौधा नहीं, घास का कालीन नहीं, पानी का [illegible] नहीं, बहती हुई नालियाँ नहीं। फिर भी यह एक बगीचा कहलाता है। बजरी पर लहरदार भँवर-सी नालियाँ बनी हुई हैं। इन्हें प्रतिदिन साफ करके सँवारा जाता है। इन्हें देख कर लहरों का भ्रम होता है। पत्थरों को ध्यानपूर्वक देखने से स्पष्ट हो जाता है कि इन्हें बहुत समझ-बूझ कर विशेष ढंग से रखा गया है। ये पत्थर-निरन्तरता के द्योतक हैं, जड़ और चेतन का सुन्दर संयोग। समुद्र की लहरों से अठखेलियाँ करते हुए द्वीप समूह मानो मन और प्रकृति का संगम। मंडराते बादलों के ऊपर उत्तुंग पर्वत-शृंग। आकाश में, प्रकाश रश्मियों में तैरते अमित गति से दौड़ते, बुद्बुद् नागगण। इस कल्पना पर बौद्ध-धर्म और दर्शन का स्पष्ट प्रभाव है। प्रकृति के नश्वर सौंदर्य को शाश्वत जीवन देने का यह अनूठा प्रयास सचमुच उद्यानकला की अनुपम कृति है।

जापान में उद्यान-कला के आधुनिक रूपांकनकारों द्वारा इन शैलियों का किसी-न-किसी रूप में प्रयोग आज भी किया जाता है, किन्तु वे केवल परंपरागत पद्धतियों का अनुकरण मात्र करने से संतुष्ट नहीं होते, बल्कि जागरूक कलाकारों के समान प्राचीन शैलियों का उपयोग, आज की सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार उत्तम ढंग से करते हैं। होटलों, दफ्तरों और बड़ी-बड़ी फर्मों की ऊँची-ऊँची अधुनातन अट्टालिकाओं में जापान की उद्यानकला के ऐसे सजीव नमूने देखने को मिलेंगे जो न केवल इस कला की परंपराओं के प्रतीक हैं, बल्कि आधुनिक प्रभावों का प्रतिनिधित्व भी करते हैं। कगावा प्रोफेक्चरल गवर्नमेंट आफिस की इमारत के साथ जुड़ा उद्यान, जिसका रूपांकन ताये ने किया, समकालीन शिल्प की उत्कृष्ट कृति है। क्योतो की तकारा बीयर ब्रीवरी के बाग का रूपांकन क्योतो विश्वविद्यालय के कृषि-विभाग में उद्यान-कला के अनुसंधान-कर्ताओं द्वारा इस तरह किया गया है कि सौंदर्य और उपयोगिता एकाकार हो गए हैं। यह एक ओर कंपनी के कर्मचारियों के मनोरंजन का उत्कृष्ट स्थान है तो दूसरी ओर बीयर पार्टियों के लिए शानदार जगह है। उद्यान-कला के प्रेमियों में तोक्यो के 17 मंजिला होटल आटानी का बाग भी काफ़ी लोकप्रिय है। भूतपूर्व राजकुमार हिगासी फुशिमी के महल के प्रांगण में लगा बाग और समीप के होटल की ऊँची इमारत, दोनों एक-दूसरे की शोभा बढ़ाते हैं।

जापानी उद्यानों की सुन्दरता का ही यह प्रभाव है कि आज संसार में जापानी उद्यानकला की धूम है। शताब्दियों के परिश्रम के फलस्वरूप सौष्ठव प्राप्त करने वाली जापानी उद्यानकला में सार्वभौमिकता इस सीमा तक मौजूद है कि बाग़-बानी की जापानी वस्तुएँ अमरीका और यूरोपीय देशों में बड़े शौक से मँगाई जाती हैं और अनेक देशों में जापानी ढंग के बाग लगाने का फ़ैशन चल पड़ा है।

पेरिस के यूनेस्को भवन में जापानी ढंग का शानदार बाग है। इसका रूपांकन प्रसिद्ध जापानी शिल्पी इसासु नागुची ने किया है। यह बाग यूरोप में जापानी उद्यानकला की प्रगति का नमूना है।

क्योतो का एक और प्रतिनिधि स्थल नीजो का किला है। इसमें खाई के अलावा किले से मिलने वाली कोई भी चीज दिखाई नहीं पड़ती। देखने में यह एक जापानी घर-सा है। इसका फर्श लकड़ी का है और कमरों की दीवारों पर जापानी चित्रकारी के उत्तम नमूने हैं। फर्श पर सुन्दर तातामी बिछी है। यहाँ आकर जापान के रोमांचकारी इतिहास के चित्र स्मृति में उभरने लगते हैं। इसके अंत:पुर के कक्षों एवं अतिथि-गृहों की शोभा देखने योग्य है। सामने देवदार और अन्य विशालकाय वृक्ष हैं। उनकी झुकी हुई शाखाएँ देखकर लगता है कि वे विनम्र भाव से इस महल में रहने वाले शोगूनों का अभिवादन कर रही हैं। इसके चमकदार फर्श पर रंगबिरंगे किमोनो पहन कर जब शोगून विचरते होंगे तब आभास होता होगा कि देव-दूत इस कला-कृति को देखने आए हैं। उनके पद-चाप से शायद बाहर खड़े संतरी जान जाते होंगे कि उनके स्वामी आ रहे हैं। भित्ति-चित्रों में चेरी के फूल, चिड़ियाँ, पाइन के पेड़, हंस, बत्तख, बुलबुल, बाँस के बाग, सफेद बर्फ, शेरों का जोड़ा आदि देखने योग्य हैं। रेखाओं में रंग बड़े संयम से भरे गए हैं। इन्हें देखकर अनजाने ही कोमल भावनाओं का उद्रेक होता है।

क्योतो पहुँचकर वहाँ के प्रसिद्ध ऐतिहासिक चाय-घर में जाना बहुत जरूरी है। ये चाय-घर महलों या मंदिरों के उद्यानों के किसी कोने में बने होते हैं। जापान में चाय पीने की पद्धति को भी कला का रूप दे दिया है जिसका श्रेय क्योतो को है। इस कला का ज्ञान और जीवन में इसका अनुशीलन सुसंस्कृत लोगों के लिए आवश्यक समझा जाता है।

पन्द्रहवीं शताब्दी में योशीमाया शोगून के दरबार में दाको नामक सब से पहले दरबारी ने चाय-पद्धति का प्रयोग किया था। क्योतो नगर के कोलाहल से दूर, एक शांत पहाड़ी पर, एक कुटिया बनवाई गई थी। वहाँ अपने विशिष्ट अतिथियों और दरबारियों के साथ शोगून चाय-सत्कार में भाग लेने आते थे। चाय पीने के नियमों को निभाना सबके लिए अनिवार्य था। दो विरोधी सामंतों में मेल कराने के लिए चाय-घर से अच्छी और कोई जगह नहीं थी। उसमें जाने से पहले सामंत अपने शस्त्र बाहर की बेंच पर रख जाते थे और फिर शांत भाव से चाय-कुटीर में प्रवेश करते थे। इस कुटीर में कलात्मक वस्तुओं का संग्रह होता था जिसे देखकर अतिथि आनन्द प्राप्त करते और उसकी सराहना करते थे। एक कमरा बाहर होता था और चाय का कमरा अंदर। दोनों के बीच सँकरा रास्ता और चारों ओर सुन्दर उद्यान। पहले उद्यान में बैठ कर, प्रकृति के सामीप्य में

अतिथि अपने विचारों को शांत करते थे। पास ही जलकुण्ड होता था, जिसमें हाथ, मुँह धोते और फिर एक छोटे द्वार से कुटिया में प्रवेश करते थे। इस सँकरे द्वार को बनाने के दो कारण थे। एक यह कि कोई अपने शरीर में तलवार छुपा कर न ले जाए और दूसरे, *अपने अभिमान को बाहर ही छोड़ कर आये।*

चाय कक्ष के ताकोनुमा पर अमूल्य काकीनोको और आईकेबाना में फूल और सुन्दर पत्थर रखे रहते थे। अतिथि अन्दर आते ही इन कलात्मक वस्तुओं को देखते और सराहते थे। इतनी देर में चाय बनाने वाला ज़मीन पर अंगीठी जला कर एक लोटे में पानी रखता था। चाय पीने वाले अतिथि उसके चारों ओर बैठते थे। चमचे से प्याले में चाय का चूर्ण डाल कर उस पर गर्म पानी डाला जाता और फिर बांस की लकड़ी से उसे हिलाया जाता था। यह चाय जिसमें न तो दूध पड़ता था और न चीनी, अतिथियों को दे दी जाती थी। पहला अतिथि प्याली को होंठ तक ले जाकर एक घूंट पी लेता और फिर उसे दूसरे को दे देता था। इस तरह एक ही प्याले में सब लोग चाय पिया करते थे और अंतिम अतिथि बची-खुची चाय पी जाता था। चाय का यह प्याला बड़े ही कलात्मक ढंग से सजाया जाता था। उस पर तरह-तरह की चित्रकारी होती थी। प्याले को पकड़ने के लिए कोई हैंडल नहीं होता था। उसे दोनों हाथों से उठाया जाता था। चाय के बाद अतिथियों की आपस में बातचीत होती थी।

चाय-पान कला पर भी बौद्ध प्रभाव है। बौद्ध भिक्षु और उपासक अपने ध्यान में रत रहने के लिए हरी पिसी हुई चाय का प्रयोग करते थे। इससे उन्हें एक हल्का-सा नशा और स्फूर्ति मिलती थी।

इस संस्कार में आध्यात्मिकता के साथ सौंदर्य की उपासना भी थी। चाय-संस्कार काफी लंबे समय तक चलता था। कभी-कभी इसमें दो-तीन घंटे भी लग जाते थे। यहाँ लोग शांत मन से अपनी भावनाओं और विचारों पर संयम रख कर 'सत्यम्शिवम्सुन्दरम्' की उपासना करते थे। सामन्ती युग के आपसी झगड़ों को दूर करने के लिए चाय-घरों का शांत और कलात्मक वातावरण बहुत ही काम आता था।

विश्वविख्यात गेईशाओं का मुख्य केंद्र भी क्योतो में ही है।

जापान में जाने वाले प्रायः सभी सैलानियों के मन में गेईशाओं को देखने और उनसे मिलने की उत्कट इच्छा रहती है। 'गेईशा' एक अनजाने कमनीय रहस्य का द्योतक बन गया है और उसके चारों ओर अनेक धारणाएँ और भ्रांतियाँ लिपट गई हैं। यदि जापान को सौंदर्य की देवी का मंदिर कहा जाए तो गेईशाएँ उस मंदिर की देव-दासियाँ कही जाएँगी। वे रूप, सज्जा और शृंगार की रानियाँ हैं। नृत्य, संगीत और वार्तविलास की अनथक साधिकाएँ हैं। वे पुरुषों के *विलास, भावुकों और रसज्ञों की उपासना, जापानी गृहणियों की आंतरिक ईर्ष्या*

और उपदेशकों तथा धर्माधिकारियों की भर्त्सना का केन्द्र बन गई हैं। उनकी अधखुली आँखें, छोटी नाक, नन्हा-सा मुँह, पतले होठ, गले के पृष्ठ भाग की चमकदार श्वेत त्वचा, हल्का शरीर और बड़े-बड़े बेल-बूटों से सजे, भड़कीले रंग के किमोनो-लिबास, एक मोहक वातावरण की सृष्टि करते हैं। उनके जूड़े के मुकुटों में आधुनिकता और अजंता का सम्मिश्रण है। बालों में गूँथी, कानों तक लटकती मोती, मणि और फूलों की सिंगार-पट्टियाँ मानों किसी काले पहाड़ से निसृत जल-धारा के समान हैं। गति में मंथरता, मुख पर उदासी, स्वर में चिड़ियों की चहचहाहट और व्यवहार में भोलेपन का आभास उनकी विशेषता है। जापान की इन मोहक गुड़ियों के नाम-मात्र से कौतूहल और जिज्ञासा जाग्रत हो उठती है।

गेईशा शब्द दो चीनी शब्दों से मिल कर बना है। इनका अर्थ है, 'कला' और 'लोग'। अतः गेईशा का अर्थ 'निपुण लोग' या 'कलाकार' है। अठारहवीं शताब्दी के मध्य में सामुराई (जापानी सामंतों) पर आश्रित उन पुरुषों को गेईशा कहा जाता था जो धनुर्विद्या, घुड़सवारी और तलवार चलाने में सिद्धहस्त होते थे। कुछ समय बाद इस शब्द का प्रयोग उन नर-नारियों के लिए होने लगा, जिनका काम भूस्वामियों का मनोविनोद करना था। धीरे-धीरे केवल स्त्रियाँ ही यह काम करने लगीं। ऐसी स्त्रियों के लिए पहले 'ओदोरिको' शब्द का प्रयोग होता था बाद में इस मुँहफट लक्षणा की अपेक्षा अधिक व्यंजनात्मक और सुसंस्कृत होने के कारण 'गेईशा' शब्द प्रयोग में आने लगा। आज तो सभी गेईशाएँ स्त्रियाँ ही होती हैं।

क्योतो में गेईशाओं के रहने के तीन मुहल्ले हैं। हर एक की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं। एक है गोयन, जो सबसे समृद्ध और विख्यात है। यहाँ की नाट्य-शालाओं के चेरीफूलों के नृत्य बड़े प्रसिद्ध हैं। दूसरा स्थान शिमबाबा का है। इसकी रहस्यमय गलियों का राज बहुत ही कम लोगों को मालूम है। और तीसरा मुहल्ला पोनटोचो है जो कामो नदी के किनारे पर बसा है। यह स्थान अत्यन्त रमणीय है। इसके छोटे-छोटे लकड़ी और बाँस के मकान बहुत ही पास-पास हैं। बिना गाइड के इसके अन्दर पहुँचना बहुत कठिन है।

अधिकतर गेईशाएँ खानदानी पेशेवर होती हैं। फिर भी कुछ लड़कियाँ गरीबी और भड़कीली दुनियाँ की चकाचौंध से खिंच कर इस व्यवसाय में दाखिल हो जाती हैं। बीस हज़ार से लेकर तीस हज़ार येन तक (चार-सौ से लेकर छः-सौ रुपये) और अति सुन्दर और आकर्षक होने पर पचास हज़ार से एक लाख येन (एक हज़ार से दो हज़ार रुपये) तक उनकी क़ीमत दी जाती है। उनको पालने वाली माताएँ 'ओकामान' कहलाती हैं, जो अपने विगत जीवन में गेईशा का काम कर चुकी होती हैं। जापान के क़ानून के अनुसार लड़कियों का रूप-

विक्रय नहीं किया जा सकता। इसलिये ओकामान उन नन्हीं बच्चियों को अपनी लड़की कह कर रखती हैं। उन्हें सात-आठ साल तक नाच-गाने और सामीसान (तीन तारों का बना हुआ एक सितार) बजाने की शिक्षा दी जाती है। साथ ही उन्हें जीवन की अन्य कलाओं, चाय-पान की परंपरा तथा श्लेष और शोखी से भरपूर वाक्-विलास की शिक्षा दी जाती है ताकि वे अपने आश्रयदाताओं का मनोविनोद कर सकें। इकेबाना यानी फूलों को सजाने की पद्धति भी इन्हें सिखाई जाती है। दिन में स्कूलों और शाम को पार्टियों में जाकर ये पुरुषों के मन-बहलाने की पद्धतियों का अध्ययन करती हैं। शिष्य के रूप में इन किशोरियों को 'माईको' (नर्तकी) के नाम से पुकारा जाता है। इन कुमारियों का कटि-पट (ओबी) कमर से काफी नीचे तक लटका रहता है। पन्द्रह से अठारह साल की उम्र तक पहुँचने पर इनको आश्रयदाता मिल जाता है, जिसे 'दान्नासान' कहते हैं। ये दान्नासान धनिक होते हैं, जो कई हजार और कभी-कभी कई लाख येन देकर इन स्त्रियों पर अपना स्वामित्व स्थापित कर लेते हैं। इसके बाद ये गेईशाएँ दूसरों का मनोविनोद तो करती रहती हैं, किन्तु वफादार अपने दान्नासान के प्रति ही समझी जाती हैं।

प्रायः यह समझा जाता है कि लोग गेईशाओं के घर पर ही जाते हैं। लेकिन यह बात पूरी तरह ठीक नहीं है। गेईशाओं के घर चाय-घरों या मचाई से संबंधित रहते हैं। चाय-घरों में जाकर गेईशाएँ नृत्य, संगीत और अपनी मधुर बातचीत से पुरुषों का मनोविनोद करती हैं। एक तरह से वे 'होस्टेस' का काम करती हैं। दूसरी तरह के मकान 'माईचीआई' कहे जाते हैं। इनमें खाने का भी प्रबंध होता है।

गेईशाओं के चारों ओर उनकी अपनी ही दुनिया बसती है जिसमें वे लोग हैं जो सामीसान बाजे, बाँसुरी या मृदंग बनाते या किमोनो तैयार करते हैं, अथवा टैक्सी ड्राइवर हैं। यह एक ऐसी निराली दुनिया है। जिसका अपना ही आकर्षण है। गेईशाएँ इसमें इतनी रम जाती हैं कि यदि अवसर भी मिले तो शायद उस दुनिया को छोड़ना न चाहें। अधिकांश गेईशाओं की यही आकांक्षा रहती है कि बड़ी उम्र होने पर वे स्वयं 'ओकामान' बनें और अपने पेशे की परंपराएँ बढ़ायें।

गेईशाओं के पास जाना अब केवल धनी लोगों के लिए ही संभव है। उनके साथ एक शाम व्यतीत करने में पचास या सौ पौंड यानी एक हजार रुपये से लेकर दो हजार रुपये तक खर्च हो सकते हैं। इसलिये आजकल अधिकतर बड़े-बड़े व्यवसायी या कम्पनियाँ ही गेईशाओं के घरों से संबंधित हैं। वे या उनके संभ्रांत अतिथि वहाँ मनोविनोद करते हैं। उस रमणीय वातावरण में पंच मकारों का सेवन कर वे थकावट दूर करते हैं और दिन भर के अकड़े व्यक्तित्व से चैन पाते

एक जापानी गुड़िया
जापानी कला और उद्योग का सुन्दर समन्वय
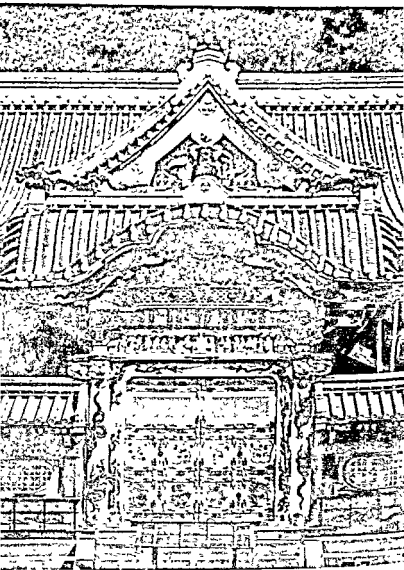
क्योतो का विख्यात स्वर्ण मन्दिर (किन्काकुजी)

जापान की 'बोनसाई' कला के प्रतीक वामन वृक्ष

निक्को का विश्वप्रसिद्ध तोशोगु मन्दिर जिसका निर्माण जापान के
विख्यात सेनानायक तोकुगावा ने सन् 1636 ई० में किया

फ़ूजीसान (फ़ूजीयामा)

जापानी वर्णमाला के भारतीय प्रवर्तक
बोधिसेन भारद्वाज
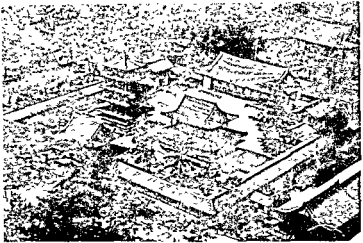
गेईशाएँ

जापान का एक भूगर्भ रेलवे-स्टेशन

प्राचीन तोक्यो की झलक

'इकेबाना'—फूल-सज्जा की कला में
जापान अप्रतिम है

तोक्यो का हवाई अड्डा

हैं। बहुत से व्यापारिक सौदे यहीं पर किये जाते हैं।
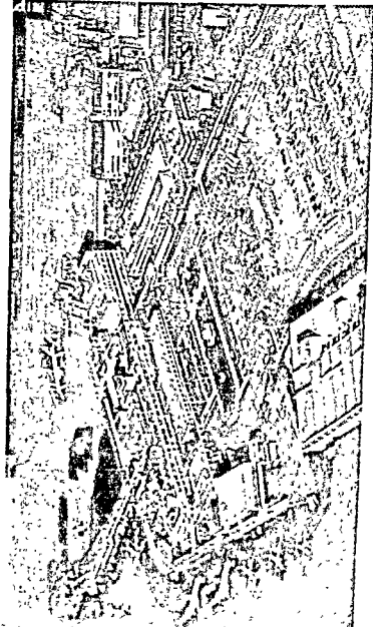
जापानी समाज में गेईशाओं को पत्नी रूप में लेने में कोई विशेष आपत्ति नहीं की जाती। लेकिन ऐसे विवाह अधिक नहीं होते क्योंकि गेईशाएँ स्वयं अपनी स्वतंत्रता बनाये रखने को उत्सुक रहती हैं। यह एक आश्चर्यजनक बात है कि अपने ऊपरी तौर-तरीकों से जापानी पत्नियाँ गेईशाओं के बारे में विशेष परेशानी नहीं दिखातीं। पत्नी की अपनी अलग दुनिया है। उस दुनिया में उनका घर, बच्चे और परिवार की परम्पराओं को निभाने का उत्तरदायित्व है। गेईशा काल्पनिक दुनिया में रहने वाली छाया है। उसका पारिवारिक जीवन पर स्थायी प्रभाव नहीं हो सकता। उसके पास आकर जापानी पुरुष अपनी दिन भर की परेशानियों को मले ही भूल जायें और कुछ समय सुख से बिता कर कला और सौंदर्य का उपभोग कर लें, किन्तु स्थायी रूप से उनका स्थान तो परिवार में ही है। उनकी परम्पराओं को निभाना उनका धर्म है। इसीलिए जापानी गृहणियाँ गेईशाओं की ओर से आश्वस्त रहती हैं। ऐसे भी उदाहरण हैं कि पत्नियों ने गहने बेच कर पतियों को रुपया दिया, ताकि वे गेईशाओं को खरीद सकें।

गेईशाओं को नैतिकता की कसौटी पर कसना ठीक न होगा। उन्हें सदियों की जापानी परम्पराओं और संस्कृति के प्रकाश में ही परखना चाहिए। आधुनिक युग में जापान ने प्रायः सभी क्षेत्रों में आश्चर्यजनक प्रगति की है। जिस तरह जापान के अन्य क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहे हैं, वैसे ही इस क्षेत्र में भी हो जायें तो आश्चर्य न होगा। पश्चिमी देशों—विशेष कर अमरीका के प्रभाव से विवाह के पहले प्रणय सम्बन्ध स्थापित करने का फ़ैशन वहाँ के युवक-युवतियों में चल पड़ा है। हर नौजवान 'गर्ल-फ्रेंड' या 'बाय फ्रेंड' के साथ मौज-मस्ती के क्षण बिताना चाहता है। उसके मन में गेईशा के शांत, मंद और अर्द्ध-सुप्त जीवन के प्रति आकर्षण कम होता जा रहा है। उसे 'जाज़' आदि पश्चिमी नाच अधिक भाते हैं। वह अपनी प्रेयसी के साथ किसी पार्क, थियेटर, रेल या चाय-घर में समय बिताना चाहता है। गेईशाओं के घर जाने वाले या तो व्यवसायी लोग हैं, जिनको कम्पनी के खाते में सारा खर्च मिल जाता है या फिर पैसे वाले विदेशी सैलानी। आज की बदलती स्थिति में उनका रूप बहुत बदल रहा है।

क्योतो से 22 मील दूर मीकीमोता का प्रसिद्ध मोती-द्वीप है। यह द्वीप तोबा की खाड़ी में स्थित है। तोबा की खाड़ी के [illegible] गरीब के घर कोकीची मिकीमोतो ने जन्म [illegible] मोतियों को पलते और निकलते [illegible] जिससे कृत्रिम [illegible] .3 ई० में [illegible] तरीका ढूंढ

मीकीमोतो का देहांत नब्बे साल की अवस्था में पूर्णायु पाकर हुआ। वे एक आस्थावान बौद्ध थे। सुना है, उनके मन में भारत के प्रति बड़ा अनुराग था।

प्राकृतिक मोतियों का जन्म सीप के अंदर तब होता है जब उसमें बाहर से कोई कण जाकर बैठ जाता है। उसे बाहर निकाल फेंकने की कोशिश विफल होने पर सीप का कीड़ा उसके चारों तरफ पतली झिल्ली लपेटने लगता है। यही झिल्ली पक कर मोती का रूप ले लेती है। प्राकृतिक मोती बालू के कण के टुकड़े के चारों ओर सीप के अंदर बनते हैं। बनावटी मोती बनाने के लिए समुद्र की सतह में जाकर औरतें घोंघे के सीप ले आती हैं। उनके अंदर विशेष पत्थरों के सुडौल रवे डाल दिये जाते हैं। घोंघे का कीड़ा भी रख दिया जाता है। इस तरह एक घंटे में तीस या चालीस आपरेशन कर दिये जाते हैं। इसके बाद समुद्र की सतह पर लकड़ी के लट्ठों के सहारे, लोहे के तारों से बने पिंजड़ों में इन मोतियों से भरे सीप और घोंघे रख दिये जाते हैं। इस तरह मोतियों की खेती होती है।

इस खेती को समुद्री तूफान, शीत या जीव-जंतुओं से बचाने के लिये विशेष सावधानी बरती जाती है। पिंजड़ों के चारों तरफ जमी हुई समुद्री घास आदि को साल में तीन-चार बार हटाया जाता है। तीन-चार या पांच-छः सालों में कृत्रिम मोती बन जाते हैं। इस खेती की कटाई जाड़ों में होती है। हर सीप में दो या तीन मोती निकलते हैं। उन्हें निकाल कर अच्छे-अच्छे मोती छांट लिये जाते हैं। उनके आकार, रंग और चमक के अनुसार उनकी फिर छंटाई की जाती है। इसके लिए उन्हें सफेद कपड़े पर बिछा दिया जाता है और सफ़ेद कपड़े पहने हुए लड़कियां ही उनको ठीक तरह से छांट पाती हैं। विभिन्न देशों में अलग-अलग रंगों के मोती पसंद किये जाते है। योरोप में गुलाबी मोती पसंद किये जाते हैं। मोती की 40 प्रतिशत पैदावार बिकने लायक होती है। उनमें तीन से पांच प्रतिशत मोती बहुत सुडौल और चमकीले होते हैं। संसार भर में मिलने वाले मोतियों मे 99 प्रतिशत जापान में ही उगाये जाते हैं।

बौद्ध अवशेष

बौद्ध धर्म के आविर्भाव के पूर्व जापान मे प्रकृति के तत्त्वों को देवी-देवताओं के रूप में पूजा जाता था। इसके सिवा प्रत्येक ग्राम का एक देवता होता था। गाँव वालों की रक्षा और उनकी इच्छाओं की पूर्ति का दायित्व उसी का माना जाता था। परिवार के पूर्वजों में भी देवत्व का आरोप किया जाता था। देवी-देवताओं के असंख्य पद होते थे। जादू-टोनों का प्रभाव भी था। भूत-प्रेतों की भी तुष्टि की जाती थी। इन सब विश्वासों और उपासनाओं को शिन्तो-मत कहा गया है। शिन्तो का अर्थ है, देव-मार्ग, अर्थात् देवताओं के बताये हुए मार्ग पर चलना। इसके अनुयायी मरुत, अग्नि, यम आदि देवताओं की पूजा करते हैं।

बौद्ध धर्म भारत से मध्य एशिया, चीन और कोरिया होता हुआ छठी शताब्दी में जापान पहुँचा। 552 ई० में कोरिया के कुन्दरा नामक शासक ने अपने देश के घरेलू झगड़ों मे जापान के सम्राट् की सहायता माँगी और बौद्ध-सूत्रों की कुछ पुस्तकें, कतिपय बौद्ध-भिक्षु और भिक्षुणियाँ, मूर्तिकार और मन्दिर-निर्माता भेंट में दिये। जापान सम्राट ने इस नये धर्म और तत्सम्बन्धी संस्कृति से प्रभावित होकर अपने देश मे उसके प्रचार का आदेश दिया। लगभग पचास वर्षों तक जापान के पुरातन धर्म और इस नये धर्म के बीच संघर्ष चलता रहा। किन्तु महिषी 'सूईको' के राज्यकाल (552 ई० से 628 ई०) में बौद्ध धर्म की स्थिति दरबार और देश में सुदृढ़ हो गई।

जापान में बौद्ध-धर्म के प्रचार का श्रेय राजकुमार शौतोकु को है। भारत में बौद्ध धर्म के प्रसार के लिए सम्राट अशोक ने तथा ईसाई धर्म के प्रसार में रोमन सम्राट कान्सटेन्टाइन ने जो कार्य किया जापान में बौद्ध-धर्म के प्रचार-प्रसार मे वैसा ही कार्य राजकुमार शौतोकु ने किया। जापान में पहले जिस धर्म का प्रचलन हुआ उस पर चीनी संस्कृति की गहरी छाप थी। नये मत के प्रसार मे सबसे बड़ी सहायता इस बात से मिली कि शिन्तो मत के देवी-देवताओं को बोधिसत्वों का अवतार माना जाने लगा।

सातवीं शताब्दी मे बोधिधर्म नाम के भारतीय बौद्ध भिक्षु जापान पहुँचे। वे पहिले भारतीय थे, जिनका जापान के इतिहास मे उल्लेख मिलता है। वह भारत से चीन गये और वहाँ से कोरिया होते हुए जापान मे आये। वह अपने साथ बहुत-

सी बौद्ध-मूर्तियाँ और धर्म-ग्रन्थ ले गये थे। कहते हैं कि 645 ई० में उन्होंने अपनी चिकित्सा से जापान के सम्राट को किसी असाध्य रोग से मुक्त कर दिया। फलस्वरूप राजपरिवार में उनका बहुत आदर-सत्कार होने लगा। उनके ही प्रभाव से सम्राट ने बोधिसत्व अवलोकितेश्वर का मंदिर 650 ई० में बनवाया और मंदिर की स्थापना के उत्सव में सम्राट स्वयं सम्मिलित हुए। बौद्ध-धर्म के अनुयायी दस साल तक जापान में रहे। उन्होंने देश में बुद्ध-धर्म के प्रचार के लिये कठोर परिश्रम किया। आठवीं शताब्दी में दक्षिण भारत से बुद्धसेन भारद्वाज नामक ब्राह्मण बौद्ध-भिक्षु जापान पहुँचे। कहते हैं कि बुद्धसेन पहले चीन गये। क्योंकि उन्होंने सुना था कि वहाँ बोधिसत्व का जन्म हुआ था। चीन में जापान के एक दूत और रियो नाम के सन्यासी से उनकी भेंट हो गई। उनके निमंत्रण पर वे 636 ई० में उनके साथ ओसाका के लिये चल दिये। वहाँ जापान के सम्राट की ओर से विख्यात साधु और राज-पुरोहित गियोगी ने उनका स्वागत किया। गियोगी बुद्धसेन को 'नारा' ले गये। बुद्धसेन न केवल प्रकाण्ड पंडित थे, कला-मर्मज्ञ और कलाकार भी थे। उन्हें भारतीय नृत्यों का अच्छा ज्ञान था। उनकी विद्या और कला से प्रभावित होकर जापानी राज-परिवार ने उन्हें अपना राजगुरु नियुक्त किया। यहाँ उन्होंने संस्कृत, व्याकरण और भारतीय नृत्यों का शिक्षण आरम्भ किया।

सन् 645 ई० में नारा में एक विशाल उत्सव हुआ। उसमें संसार प्रसिद्ध बौद्ध-विरोचन की स्थापना की गई। इस समारोह में सम्राट, गियोगी और अन्य अनेक महात्मा पधारे थे, किन्तु सभापति पद के लिये बुद्धसेन को ही चुना गया। यहाँ के मन्दिर को 'तोदाई-जी' का मन्दिर कहते हैं। यहाँ के महायुद्ध का जापानी जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। बुद्धसेन ने जापानी भाषा को एक नई वर्णमाला दी जिसे हिरागाना और काताकाना नामक दो लिपियों में लिखा जाता है। यह नागरी वर्ण-माला पर आधारित थी। इससे पहले जापानी भाषा चीनी शब्द-चित्रों द्वारा ही लिखी जाती थी। जब तक जापानी भाषा रहेगी तब तक बुद्धसेन और भारत की यह देन भारत और जापान की मित्रता के प्रगाढ़ सूत्र में बाँधे रहेगी।

बुद्धसेन ने जापान में भारतीय नृत्य और संगीत का भी प्रचार किया। 'तोदाई-जी' के मन्दिर के स्थापना समारोह में उन्होंने स्वयं भारतीय नृत्य और संगीत का प्रदर्शन किया था। दक्षिण भारत के भैरव-नृत्य का जापानी रूप वहाँ के 'बैरो' नृत्य में अब भी देखा जा सकता है।

जापान में 25 वर्ष बिताने के बाद सौ वर्ष से अधिक की आयु पाकर सन् 760 ई० में बुद्धसेन स्वर्ग सिधारे। नारा में उनकी समाधि पर एक स्मारक बनाया गया। यद्यपि यह स्मारक नष्ट भ्रष्ट हो गया है तथापि वहाँ स्थापित

शिला-लेख आज भी है। इस महान भारतीय का भारत के इतिहास में कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता किन्तु कृतज्ञ जापानियों ने अपने इतिहास और परम्पराओं में उसे गौरवपूर्ण स्थान दिया है और आज भी वे बड़े सम्मान से उसे याद करते हैं।

बुद्धसेन जैसे भारतीयों के कारण ही प्राचीन जापान के बौद्ध भारत को 'तहनजो-कू' या तीर्थ स्थान समझते थे और यहां के लोगों को बड़े आदर की दृष्टि से देखते थे।

चीनी संस्कृति और संस्कारों से ओत-प्रोत बौद्ध-धर्म जब जापान में पहुंचा तो उसने पूर्व-प्रचलित, आस्थाओं और विश्वासों को आत्मसात् करने की कोशिश की। भारतीय परम्परा के अनुसार धर्म के नाम पर अत्याचार या असहिष्णुता की नीति वहां भी नहीं अपनाई गई। भारतीय सार्वभौमिकता की दृष्टि को बौद्ध धर्म ने पूरी तरह आत्मसात कर लिया था। अतः जापान पहुंचने पर बौद्ध-धर्म ने वहां के प्राचीन धर्मावलम्बियों के उत्पीड़न आदि की कोई कोशिश नहीं की। शिन्तो मत के प्रचलित रीति-रिवाजों का पालन करते हुए भी बुद्ध की शरण ली जा सकती थी। इस तरह जापानियों के जीवन में एक ऐसे मिले-जुले धर्म और शील का प्रचलन हुआ, जिसमें प्राचीन परम्परा, शिन्तो, बुद्ध, कन्फूशियस और ताओ मत के सिद्धान्त और रीति-रिवाज निहित थे। इन सब स्रोतों से प्रवाहित धर्मों को मिलाकर एक नया पंचामृत बना, जिसको पाकर जापान के जन-मन में नव-जीवन का संचार हुआ। आगे चलकर अनेक मत-मतान्तर पनपे तथा नये सम्प्रदायों का विकास और प्रचलन हुआ।

समाज-कल्याण के क्षेत्र में भी बौद्धों ने सराहनीय काम किये। अस्पताल और तालाब बनवाये। जड़ी-बूटियों का पता लगाया। धर्म-प्रचार के सिलसिले में पर्वत लांघे, नदियों पर पुल बांधे, सड़कें बनाईं, खेत जोते, पेड़ लगाये, कुएँ खोदे, गंधक के गर्म स्रोतों की खोज की। इस प्रकार जन-जीवन की सेवा, सम्पन्नता और सुख के लिये बौद्ध धर्म ने अनेक प्रयत्न किये।

अक्षर, शब्द और साहित्य

•

जापानी भाषा जितनी जटिल है उसकी लिपि भी उतनी ही दुरूह है। इसीलिए विदेशों में जापानी साहित्य के बारे में अति अल्प जानकारी है।

जापानी भाषा तीन लिपियों में लिखी जाती है। उनमें एक चीनी-चित्र-लिपि है जिसे 'कांजी' कहते हैं। जापानी भाषा के 40 प्रतिशत शब्द चीनी-भाषा से लिये गये हैं। इन शब्दों को कांजी लिपि में ही लिखा जाता है। चीनी ढंग से इनका उच्चारण भिन्न होता है। वैसे तो बीस हज़ार 'कांजी' चित्र-लिपियों का जापानी भाषा में प्रयोग होता है, पर रोज़ के काम के लिये केवल दो-हज़ार की जानकारी आवश्यक है। इन अक्षरों में कठिनाई यह होती है कि उन्हें चीनी और जापानी दोनों तरह से पढ़ा जा सकता है।

'कांजी' के साथ-ही-साथ जापानी भाषा दो और लिपियों में लिखी जाती है जिन्हें 'हीराकाना' और 'काताकाना' कहते हैं। शुद्ध जापानी शब्द बहुधा 'हीराकाना' में लिखे जाते हैं और विदेशी-भाषाओं से लिये गये शब्द 'काताकाना' में। इस तरह एक ही वाक्य में दोनों लिपियों का प्रयोग होता है। फलतः पढ़े-लिखे जापानियों को भी अपनी ही भाषा के वाक्यों को पढ़ने में कभी-कभी कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

'हीराकाना' और काताकाना' लिपियों के अक्षर नागरी अक्षरों से बहुत-कुछ मिलते-जुलते हैं। इनमें 50 अक्षर होते हैं। कहा जाता है कि जापानी भाषा में इन अक्षरों का समावेश भारतीय बौद्ध-भिक्षु बोधिसैन भारद्वाज ने किया था। उसके द्वारा जापानी और भारतीय संस्कृतियों के बीच स्थापित शृंखला अमिट रहेगी। उक्त दोनों लिपियों की वर्णमाला इस प्रकार है :—

1—अ	ई	उ	ए	ओ
2—क	की	कू	के	को
3—स	शि	सू	से	सो
4—त	चि	सू	ते	तो
5—न	नी	नु	ने	नो
6—ह	ही	हू	हे	हो
7—म	मी	म	मे	मो

8—य	ई	यू	ये	यो
9—र	री	रु	रे	रो
10—व	ई	उ	अई	ओ

इनके अतिरिक्त देवनागरी वर्णमाला के वर्गों के तीसरे अक्षरों के आधार पर कुछ और अक्षर जापानी भाषा में प्रयुक्त होते हैं जैसे—

1—ग	गी	गू	गे	गो
2—ज	जी	जू	जे	जो
3—द	जी	जू	दे	दो
4—ब	बी	बू	बे	बो
5—प	पी	पू	पे	पो

इन अक्षरों को लिखने में 'हीराकाना' या 'काताकाना' के ही अक्षरों का प्रयोग होता है। जैसे 'क' का 'ग' बन जाता है 'त' का 'द' बन जाता है, 'ह' का 'ब' बन जाता है। उन पर सीधे हाथ की ओर दो उल्टे कॉमा लगा दिये जाते हैं।

'न' को छोड़ कर जापानी भाषा के सभी अक्षरों का उच्चारण दीर्घ होता है। ल' और 'व' अक्षर भाषा में नहीं हैं। अतः जापानी लोग 'ल' की जगह 'र' और 'व' की जगह 'ब' का प्रयोग करते हैं, जिससे अंग्रेजी का 'लव' शब्द 'रोबू' हो जाएगा और 'राइज' 'लाइज' मे बदल जाएगा।

जापानी वाक्य-विन्यास हिंदी से मिलता जुलता है। उसमे पहले कर्ता, फिर कर्म और अंत मे क्रिया का प्रयोग होता है। प्रत्येक शब्द के बाद विभक्ति का प्रयोग भी होता है। प्रश्नसूचक वाक्य बनाने के लिये वाक्य के अंत में 'का' लगा देते है। जैसे हम कहें—"आप आयेंगे क्या?" जापानी कहेंगे—"वाताशीवा देस का"। जापानी संज्ञाओं के वचन और लिंग-भेद नहीं होते। संस्कृत की तरह जापानी शब्दों के भी रूप होते हैं। एक ही संज्ञा एक या अधिक पुरुषों के लिये या स्त्री और पुरुष दोनों के लिये प्रयोग में आती है। विभक्तियों द्वारा ही शब्दों का संबंध ज्ञात होता है। क्रियाओं में भी वचन और पुरुष नहीं होते। कालों में केवल भूतकाल स्पष्ट होता है पर वर्तमान और भविष्य में अंतर समझना बहुत कठिन होता है। क्रिया का एक ही रूप वर्तमान और भविष्य दोनों का काम करता है। यदि आप किसी जापानी से पूछें कि क्या वह आपको अगले दिन मिल सकेगा, तो उसका जवाब होगा 'मे-बी' अर्थात हो सकता है। आप अपनी मनो-स्थिति के अनुकूल उसका आशय समझ लें।

जापानी शब्दों की एक और विशेषता यह है कि उनका प्रयोग आदर सूचक रूप में भी किया जा सकता है। यह सामन्ती युग की देन है जिनमें हर पुरुष और स्त्री का निश्चित स्तर था और वह अपने से नीचे, बराबरी वाले या ऊँचे से बात

करते समय उपयुक्त शब्दों का प्रयोग करता था। 'माइस' का अर्थ हुआ 'जाना' (साधारण), 'ईकू', जाना, बराबर वालों के लिए और 'इरासनाह', जाना, बड़ों के लिये। इसलिए 'माइस' प्रथम वचन में प्रयुक्त होगा; 'इकू' और 'इरासनाह' व्यक्ति विशेष की मर्यादा के अनुसार प्रयोग में लाया जाएगा। इसी तरह क्रियाओं में प्रारंभ में कोई शब्द जोड़कर उन्हें आदर-सूचक बना दिया जाता है। उदाहरण के लिये 'पढ़' क्रिया के इतने रूप हो सकते हैं—योमे=पढ़, योदे कुदासाई=पढ़िये, आ-योमी-नासाई=कृपया पढ़िये, आ-योमी ने नाते कुदा-साई=पढ़ने का कष्ट करें, ओ-योमी ने नाते कुदासाई मासे=आपके पढ़ने से मैं अनुग्रहीत होऊँगा। इस तरह शिष्टता की श्रेणियों के अनुसार भाषा का रूप बदलता रहता है। हिंदी और उर्दू में शराफत के तकाज़ों को बहुत-कुछ इसी तरह निभाया जाता है। चाय को 'ओचा' कहते हैं—इसका अर्थ हुआ आदरणीय चाय। इसी कारण जापानी भाषा के अर्थ अस्पष्ट और धुँधले से लगते हैं। जहाँ परि-भाषा, तर्क या विज्ञान से संबंधित विचारों को व्यक्त करना हो वहाँ उनकी दुरूहता बाधा उत्पन्न करती है। लेकिन कई भावनाओं, कविताओं या प्रशस्ति, अथवा सामाजिक लेन-देन में यह भाषा अत्यधिक सहायक हो सकती है। इसीलिए जहाँ साहित्य और कल्पना के क्षेत्र में इस भाषा की दुरूहता ही उसकी सुंदरता है, वहाँ विज्ञान के क्षेत्र में उसका प्रयोग अत्यन्त कठिन हो जाता है। स्वीकारोक्ति और नकारोक्ति का प्रयोग अजीब ढंग से किया जाता है। मान लीजिए कि किसी से पूछा जाए—"क्या आप चाय लेना पसंद नहीं करेंगे" तो उसका उत्तर होगा 'हाय' अर्थात् 'हाँ'। पर इसने आप यह अर्थ न लगा लीजिये कि वह व्यक्ति चाय लेना चाहता है। उसके विपरीत वह यह कह रहा है कि—'हाँ मैं चाय लेना नहीं चाहूँगा'। जापानी बातचीत की विशेषता यह है कि वहाँ नकारात्मक प्रश्न इस तरह पूछा जाता है कि इसके उत्तर में हाँ ही कहा जा सके। 'नहीं' कहना जापान में शिष्टता के विरुद्ध समझा जाता है।

साहित्य

विश्व के प्रायः सभी देशों में प्रारंभिक साहित्य का आधार अधिकतर पौराणिक गाथाएँ, कहानियाँ, गीत तथा मंत्र-तंत्र रहे हैं। प्रारंभिक जापानी साहित्य भी इन्हीं रूपों में मिलता है। जब तक जापान में लिपि स्थिर नहीं हुई थी, तब तक प्रारंभिक साहित्य की धारा अलिखित रूप में ही प्रवाहित होती रही। उस समय तक जापान में बौद्ध धर्म का प्रवेश हो चुका था अतः धर्म के प्रारंभिक साहित्य पर उसका प्रभाव मिलता है। इसके बाद कविता का विशेष रूप से विकास हुआ। 'वाका' शैली की छोटी रचनाएँ जिनकी एक पंक्ति में 5 7, 5-7, और 7 शब्द 31 शब्दांश (सिलेबिल) होते हैं, विशेष रूप से लिखी गईं। इस

छद में अंत्यानुप्रास नहीं होता। इसकी कमी जापानी शब्दों के स्वरांत होने के कारण पूरी हो जाती है। स्वरांत होने के कारण अपने आप लय आ जाती है। काकिनोमोतो, हितोमारो और यामाबे नो अकाहितो इस काल के प्रमुख कवि हैं। इनकी प्रायः सभी कविताएँ गीतात्मक और तांका शैली में हैं। जापानी स्वभाव से ही सूक्ष्मता प्रिय होते हैं। इसलिए दीर्घ कविताएं, 'चौका' अधिक नहीं लिखी गईं। काव्य-संग्रहों को समय-समय पर संपादित करने की प्रथा भी रही। कविता के साथ-ही-साथ जापान में भूगोल से संबंधित पुस्तकें भी लिखी गईं। कोकिंशू नाम के काव्य-संग्रह में एक हज़ार तांका कविताएँ हैं। मध्य युग में 100 कवियों की रचना को संग्रहीत करके 'यकुनिन इस्यू' नाम की पुस्तक छपी थी।

चीन के तांग युग की अत्यंत विकसित सभ्यता का जापान पर पूरा प्रभाव था। अतः चीनी भाषा ही राज-काज और पांडित्य की भाषा बनी। किंतु जापानी महिलाओं ने इस प्रभाव से अपने को मुक्त रखा। वे अपनी रचनाएँ जापानी भाषा में ही लिखती रहीं। इस युग के साहित्य में स्त्रियों का योगदान कम महत्त्व-पूर्ण रहा। इनमें सुश्री मुरासाकी शिकिबू और सेई शोनागोन के नाम उल्लेखनीय हैं। सुश्री मुरासाकी द्वारा रचित गेंजीमोनोगातारी (गेंजी की कथा) इस काल का एक श्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। लेखिका को विशेष श्रेय इसलिये भी दिया जाता है कि उस समय तक संसार की किसी भी भाषा में कोई मनोवैज्ञानिक उपन्यास नहीं लिखा गया था। इस उपन्यास में हेइयन-क्यो के दरबारी जीवन तथा उस युग की शृंगारी वृत्तियों का चित्रण बड़े रोचक तथा सजीव ढंग से किया गया है। सुश्री सेई शोनागोन ने दरबारी जीवन पर 'माकुरा नो सोशी' नाम से स्केच भी लिखे हैं।

मध्य युग में जापानी साहित्य पर बौद्ध युग का प्रभाव पड़ा और बहुत से निबंधों की रचना हुई। निबंधों का विषय था बौद्ध-धर्म, जब कि प्रबंध काव्य शिंतो धर्म की ओर उन्मुख थे। धार्मिक उन्मेष के कारण नीतिपरक साहित्य भी लिखा गया। होजोकी एक प्रसिद्ध निबंध है जिसका आधार युद्ध और बौद्ध-धर्म है। शीकी मोनोगातारी में चार ऋतुओं की कहानी है। इनके अतिरिक्त दार्श-निक मुनि यूइन यो और निचिरेन शोनिन की 'रिस्शो अंकोक रौन' उल्लेखनीय कृति है। दूसरी पुस्तक में होजनो सरकार की बौद्ध-धर्म के प्रति आस्था को सराहा गया है और कुछ मामलों में उसकी भर्त्सना भी की गई है। इस युग की प्रायः सभी कृतियों पर विषाद की एक करुण छाया मण्डराती है। तत्कालीन परिस्थि-तियों तथा बौद्ध-धर्म की नैराश्य भावना का ही यह प्रभाव है।

'नो' नामक गीतात्मक नाटक लिखने की प्रथा भी चली थी। ये नाटक ऐसे थे जैसे संस्कृत में और हिंदी के प्रारंभिक युग में गद्य-पद्य मिश्रित नाटक लिखे गये। विश्व के प्रायः सभी देशों में नाटकों का संबंध धार्मिक त्योहारों से रहता

था। बाद में अन्य अवसरों पर मनोरंजन के लिए भी ये प्रयुक्त होने लगे। इनमें गायन के अतिरिक्त मुद्रों का प्रचुर योग रहता था। ताइकासागो, ओइमात्सू, मानिवा, दोजोजी और तोमैन, इस काल के प्रसिद्ध नाटक हैं।

उन्नीसवीं सदी में रंगमंच और नाटकों का काफी विकास हुआ। विकामात्सू मोंजाएमोन इस काल का महान नाटककार था। इसने ऐतिहासिक और सामाजिक दोनों प्रकार के नाटक लिखे। इनमें 'कोक्सुसेन्या कास्सेन', 'सोनेजाकी शिजु', 'मेइदो नो हिक्याकू' और 'हाकाता कोजोरो नामीमाकुरा' नाटक प्रमुख हैं। त्सूबूची ने कई उपन्यास और नाटकों की रचना की। इसके नाटक 'किरीहितोहा', 'होतोतोगीसू' 'कोजो राकूसेरमू' और 'माकिनोकाता' पर शेक्सपियर का प्रभाव स्पष्ट है। इन नाटकों का कथानक ऐतिहासिक है।

मेजी युग के प्रारंभ में जापान पश्चिम के संपर्क में आया। इसका व्यापक प्रभाव वहाँ के जन-जीवन तथा राजनैतिक और साहित्यिक विचारधाराओं पर पड़ा। पश्चिम के कितने ही मनीषियों—रूसो, मिल, वाल्तेयर, टाल्सटाय, इब्सन, मोपांसा, जोला, नीत्से, शेक्सपियर एवं रोमांटिक कवियों, एज़रा पाउंड, इलियट सार्त्रे, कामू, किर्केगार्ड आदि की रचनाओं के अनुवाद हुए। इनकी रचनाओं के प्रभावस्वरूप जापानी साहित्य में नये क्षितिजों का उद्घाटन हुआ, यद्यपि पश्चिमी प्रभाव को दूर रखने और राष्ट्रीय परंपराओं को बनाये रखने के प्रयत्न भी बराबर होते रहे।

पहिले पश्चिमी उपन्यासों के अनुवाद जापानी भाषा में छपे। फिर उनका आधार लेकर जापानी साहित्यकारों ने अपने देश के सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नों को जनता के सामने रखने के उद्देश्य से उपन्यासों की रचना की। इन उपन्यासों के पात्र जापानी परंपरा से उतने अनुप्राणित नहीं थे जितने रूस और फ्रांस के कथा-साहित्य के नायक और नायिकाओं से। इन लेखकों का जापानी के प्रति द्रष्टा का-सा रोमानी दृष्टिकोण था।

पश्चिम से प्रभावित अनेक यथार्थवादी, यौनवादी और हास्यपरक उपन्यासों की रचना हुई। यौनवादी उपन्यासों में ईहारा सेईकाकू के उपन्यास 'फेदोकोरा ना सुजूरो', 'कोशोकू इचिदाई ओतोको', 'कोशोकू इचिदाई ओन्ना' बहु-चर्चित उपन्यास हैं। इसी उपन्यासकार की एक कृति है, 'कोशोकू गोनिन ओन्ना' है। इसमें कामुक नारियों से संबंधित पाँच कहानियाँ हैं। जिपेन्शा इक्कू कृत 'हिज़ा कुरीगे' और शिकितेई सान्बा कृत 'उकियो बूरो', 'उकियो देको' 'शिजहानी कसे' और 'कोकोन हियाकुनिन बाका' हास्य प्रधान उपन्यास हैं। इस युग में रोमांटिक उपन्यासकारों में क्योकुतेई बाकीन का नाम प्रसिद्ध है।

आधुनिक जापानी उपन्यासों में वहाँ के लोगों की समस्याओं, संघर्षों और कुण्ठाओं के मार्मिक चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। इन उपन्यासकारों में से कुछ ने विश्व-

व्यापी ख्याति पाई है, जैसे तावासाकी, मातावाता, दाजाई, इनांउई और मिशिमा।

मिशिमा के उपन्यास 'क्योतो के स्वर्ण मंदिर' की पिछले दिनों काफी चर्चा हुई है। इसमें एक विक्षिप्त बौद्ध-भिक्षु का अत्यंत सारगर्भित चित्रण किया गया है। अपनी विकृत मनोदशा के फलस्वरूप उसने विश्वविख्यात मंदिर को जला कर भस्म कर दिया था। इस सत्य घटना पर आधारित 'मिशिमाज' अत्यंत कोमल भावों से पूर्ण मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। ज़ेन विचार-धारा के अनुसार और चरित्रों के वर्णन और विश्लेषण के स्थान पर केवल घटनाओं का व्यंजनात्मक चित्रण कर दिया है। केवल प्रतीकों और सकेतों के सहारे पाठकों की कल्पना को जागृत किया है। कानाबाता के उपन्यास में जापानी विषयों और पृष्ठभूमि का बड़ा मोहक वर्णन मिलता है। आत्मकथा के रूप में लिखे गये मनोवैज्ञानिक उपन्यासों और कहानियों का आजकल जापान में बहुत चलन है। ऐसी कथायें हज़ारों की संख्या में छपती हैं। उन्हें बच्चे और बूढ़े, स्त्री और पुरुष, सभी बड़े चाव से यत्र-तत्र पढ़ते हुए देखे जा सकते हैं।

पिछले 300 वर्ष में जापानी कविता के सबसे लोकप्रिय छंद 'हाईकू' या 'होक्कू' का विकास हुआ। यह छंद केवल तीन लघु पंक्तियों का होता है और 5-7 और 5 शब्दांश (सिलेबिल) पर निर्भर रहता है। इस छंद में कवि प्राय' किसी-न-किसी ऋतु, वातावरण या प्रकृति की ओर संकेत करता है। पाठक के मन में भाव स्वतः ही उभर आते हैं। उनके लिये टीका-टिप्पणी या वर्णन की अपेक्षा नहीं। कवि अपनी कविता से अलग रहता है। उस पर अपनी भावनाओं अथवा व्यक्तित्व की छाया नहीं पड़ने देता। हाईकू का कवि चित्रकार होता है, समीक्षक नहीं। उसके पदों में अनुभूति की तस्वीर मिलती है, भावों की झाँकी नहीं। उनके अर्थ करना, उनकी सुंदरता को समझना पाठक की अपनी वृत्ति और क्षमता पर निर्भर है। इस कारण कभी-कभी कवि का आशय अस्पष्ट या रहस्यमय हो जाता है। उदाहरण के लिये बाशो का एक हाईकू देखिए—

सूखी डाली
पर बैठा कौआ एकाकी
पतझर की संध्या की लाली।

इसको पढ़कर मन में एक तस्वीर उठती है। ऊपर सुभ्र नीलाकाश में संध्या की लालिमा-कालिमा में बदल रही है। सामने एक विशाल वृक्ष, स्थिर और नग्न। उसकी सूखी शाख पर काला कौवा एकाकी बैठा है, एक अज्ञात और लाचार सूनेपन की टीस का अनुभव होता है। सूखी शाख, कौवा और पतझर की साँझ, तीनों ही मन पर विषाद की रेखाएँ खींच देते हैं। कवि कुछ न कह कर भी सब कुछ कह जाता है और किस सादगी से हमारे अंतर पर अपने अंतर के उदास सूनेपन की छाप लगा देता है। इस तरह प्रकृति के माध्यम से कवि केवल अनुभव

की रेखायें खींचता है। उनमें भावों के रंगों को भरने का दायित्व पाठकों पर छोड़ देता है। हाईकू का आकार, सौंदर्य की झांकी के क्षणों के अनुरूप, छोटा होता है। जितनी देर में मुंह से 'वाह' निकलता है, उतनी देर में ही 'हाईकू' का पढ़ना समाप्त हो जाना चाहिये। वह आधुनिक कैमरे द्वारा क्षण को प्रतिबिंबित करने वाला निगेटिव है, जिसके प्रिंट का आकार और रंग पाठक पर निर्भर रहता है।

कुछ हाईकू कविताओं के रूपांतर नीचे दिए जा रहे हैं :—

टूटी एक कली
लौट रही थी डाली पर
वह थी तितली
(मोरीताके)

'प्रिय, गरमी हलकी-हलकी'
मैंने उससे कहा और आंखों में
वह रोक न पाई बूंदें जल की

शान्ति ऐसी
चीखें टिड्डे की
चट्टानों के हृदय में डूब जाती हैं।

प्राचीन सरोवर
अन्दर कूदा मेंढ़क
जल झप

एक अकेले अपने राम
अन्य न कोई इस पथ पर
केवल पतझर की शाम
(बाशो)

बिजली की चमक
गमक बूंदों की
बाँसों के वन में

श्वेत गुलदाऊदी के सामने
हिचकिचाने लगी कैंची
एक पल

साँझ की हवा के संग
तंग करती है लहरें
बगुले की टाँगों को
(बूसोन)

'हाईकू' बहुत कुछ उर्दू के शेर या हिंदी के दोहों की तरह होते हैं। उनमें ...बिम्ब और सारगर्भित संदर्भ द्वारा गागर में सागर भरने का यत्न किया

जाता है। प्रत्येक शिक्षित जापानी 'हाईकू' लिखने का प्रयास करता है और उसकी सफलता उसकी शिक्षा की पूर्णता की द्योतक समझी जाती है।

महायुद्ध के बाद जो जापानी कविता लिखी गई उसमें गिरती हुई मीनारों और ढहते हुए मकबरों के चित्र हैं। एटमबम की विभीषिका ने तो ताका के मृदु-स्वरों को निराशा और आतंक में बदल दिया है। औद्योगिक विकास, नये-नये यंत्रों के आविष्कार, कल-कारखानों की स्थापना तथा अनेक वैज्ञानिक उपलब्धियों के कारण जीवन इतनी तेज़ी से बदला कि परंपरागत काव्य-उपादानों जैसे—फूल, तितली, निर्झर, पर्वत आदि का कोई मूल्य नहीं रहा। विद्युत रेलों, बमवर्षक वायुयानों और धुआँ उगलती चिमनियों के आगे सभी अनुपयोगी हो गये।

शिमाज़ुरा होगेत्सु और हासेगावा तिनकोई प्रकृतिवाद के समर्थक थे। शीमाज़ाकी तोसोन, ओसुगी तेंगाई, कुनिकीता दोप्पो और तायामा काताई ने प्रकृतिवादी रचनाएँ कीं। इनमें नर-नारी के प्रेम तथा यौन जीवन को अभिव्यक्ति दी गई है। शीमाज़ाकी को आधुनिक जापानी साहित्य का स्तंभ माना जाता है। उसे उपन्यासकार तथा कवि, दोनों ही रूपों में यश मिला है। उसके उपन्यास 'योआके माए' (रचना काल 1935) दो खण्डों में विभाजित उपन्यास है, जिसमें लगभग डेढ़ हज़ार पृष्ठ हैं। इसमें जापानी जीवन का बड़ा ही सजीव चित्रण है। नात्सोमे सोसेकी प्रकृतिवाद का विरोधी था। 'बोटचान' इसकी प्रसिद्ध पुस्तक है। इसमें उसने बताया है कि अवकाश का सुंदर उपयोग कर जीवन को आनंदमय बनाया जा सकता है। प्रकृतिवाद के विरोधी अन्य साहित्यकारों में तानिज़ाकी जुनिचिरो और नागाई काफू, योशी ईसामू, नागाता मिकिहीको और तायूरा तोशीको, मुशाकोजी सानेआत्सु, आरिशीमा ताकेओ आदि हैं। ये आदर्शवादी और रोमांटिक विचारधारा के लेखक हैं।

सलानियों के स्वर्ग में

•

प्रकृति और पुरुष ने मिलकर जापान को सैलानियों का स्वर्ग बना दिया है।

कश्मीर की तरह समूचा जापान नंदन-वन सा सुंदर है। चार मुख्य द्वीपों और असरूप छोटे-छोटे द्वीपों की मालाओं से घिरा हुआ हुआ यह देश वन और पर्वतों से आच्छादित है। 85 प्रतिशत भूभाग पर पर्वत और घाटियाँ बिछी हुई हैं। इनमें चीड़ और देवदार के गगनचुम्बी वृक्ष लगे हैं। वनस्पतियों की हरियाली सदा छाई रहती है। घाटियों और पहाड़ियों को लाँघती हुई टेढ़ी-मेढ़ी राहें किसी अज्ञात और रहस्यमय गंतव्य की ओर जाती लगती हैं। यहाँ के नदी-नद, गिरि-गुफाएँ, वन-उपवन चेरी, मेपिल और गुलदाउदी के फूल, तालाब और झीलें रंगबिरंगी मछलियाँ, उफनते समुद्र, दहकते ज्वालामुखी, कलकल करते जल-प्रपात और गंधक के झरने मानो नियति-नटी के इस अलौकिक क्रीड़ा-केन्द्र को सजाने में लगे हैं। प्रकृति के मोहक सौंदर्य को जापानी लोगों ने अपने जीवन में आत्मसात करने का सतत् प्रयत्न किया है। उनके रीति-रिवाज काम-धंधों और मनोविनोद सभी में प्रकृति के सुंदर स्वरूप को कला द्वारा उतारने या उसकी पूजा करने का प्रचलन है। ज्योत्स्ना में घुलकर जब जापान की अलौकिक छवि निखर उठती है, उस समय सहस्रों जापानी नर-नारी अपने घरों के बाहर जाकर 'चंद्र-दर्शन' के रिवाज का पालन करते हैं। समुद्र की उत्तुंग लहरों से धुलती हुई जापान की तट-रेखायें आकर्षक दृश्य उपस्थित करती हैं। वसंत में चेरी के फूलों की सज्जा, शिशिर में मेपल के लाल-सुनहरे फूलों की चुनरी, गुलदाउदी के रंग-बिरंगे फूलों के आभूषण, हेमंत में देवदार की नुकीली पत्तियों पर सधे हुए बर्फ के फाहों से बनी सफेद साड़ी—प्रत्येक ऋतु के परिवर्तन के साथ जापान की स्त्री अपना शृंगार बदलती है। प्रकृति के इस अनूठे सौष्ठव को देखने के लिये हर साल लाखों देशवासी और हजारों विदेशी जापान के सुषमा-स्थलों की सैर को जाते हैं।

अपनी कलात्मक-सुरुचि और व्यावसायिक बुद्धि द्वारा जापानियों ने नैसर्गिक सौंदर्य को अनेक तरह से आकर्षक बना दिया है। दो पहाड़ियों के बीच, लोहे के रस्से से लटकती हुई 'केबिलकार' पर बैठ हजारों फ़ीट गहरी घाटी को पार करते

हुए एक विचित्र अनुभव होता है। ऊँचे शिखरों पर चढ़ने के लिये न केवल गोल-चक्करदार सड़कें हैं वल्कि मोटे की रस्सियों से खिचने वाली रेलगाड़ियों की व्यवस्था भी है। ऐसी रेल-लाइन हमारे यहाँ ऊटकमंड जाने के लिये बिछी है। झीलों पर नावें और जहाज इधर से उधर आने-जाने रहते हैं।

जापान की रेलें संसार में सबसे अधिक तेज और समय पर चलने वाली हैं। वहाँ की रंगबिरंगी टूरिस्ट बसें लोगों को एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँचाती हैं। बड़े-बड़े शहरों में कई-कई मंजिलों के सुंदर होटल हैं। वहाँ की सुंदर परिचारिकायें, खाने-पीने की सुविधायें और मनोविनोद के साधन संसार भर से निराले हैं। जापानी ढंग से बने हुए मकान, जिनमें जापान की परंपरा के अनुसार सैलानियों की आव-भगत की जाती है, जगह-जगह मिलते हैं। ऐसे स्थानों को 'रोकयोजो' कहते हैं। उनमें रहकर विदेशी सैलानी जापान के रहन-सहन से परिचित हो सकते हैं। पूरे देश में 500 युवक-होस्टल हैं। इनमें न केवल जापान के वरन् संसार के सभी देशों के युवक विद्यार्थी सस्ते दामों पर ठहर सकते हैं। सभी सैलानी केंद्रों में होटल्स हैं। उनमें रहने-सहने का समुचित प्रबंध होता है। जापान की 'चाय-सेरीमनी', सुंदर-उद्यान, किमोनो के लिबास और मनोविनोद के अन्य साधन भी यहीं होते हैं। कहते हैं कि आज संसार में कोई भी ऐसा नगर नहीं जिसमें मनोरंजन के इतने सस्ते साधन हों जितने तोक्यो में हैं। ओपेरा-सिनेमा, कैबरे-बार, नग्न-नृत्य, चायघर आदि आपको सभी जगह मिल जाएँगे।

विदेशी सैलानियों के लिये सबसे बड़ा आकर्षण है जापान के लोग जो शिष्ट, सौम्य होने के साथ सहायता के लिये सदा तत्पर रहते हैं। वहाँ की स्त्रियां सौंदर्य की खान हैं। उनकी गुड़ियों-सी शान्त आकृति अधखुली आँखें, पतले होंठ, गोरा बदन—छोटे-छोटे हाथ-पैर, सरल व्यवहार, अत्यंत मोहक चमकीले और भड़कीले रंगों के फूल और बेलों से सजे किमोनो—जापानी तरुणियाँ जब चलती हैं तो ऐसा लगता है मानो फूल अपनी डालों पर चल रहे हों। सभी देशों के सैलानी उनके अपरिमित आकर्षण में बिंध जाते हैं। यदि आप सुंदर वस्तुओं को देखना या खरीदना चाहें तो जापान में ऐसी अनेक चीज़ें आपको मिलेंगी। वहाँ के मोती संसार भर में प्रसिद्ध हैं। वहाँ के ट्रांजिस्टर रेडियो, टेप-रिकार्डर और टेलिविजन सेट संसार में अद्वितीय माने जाते हैं। वहाँ के रेशम और नाइलोन के कपड़े, गुलदस्ते और अन्य कलात्मक वस्तुएँ सर्वत्र आदर की दृष्टि से देखी जाती हैं। 'ईकेबाना', फूल सजाने की कला तथा जापान के चित्रों का विदेशों में बड़ा मान है। जापान की फोटोग्राफ़ी और छपाई अत्यंत आकर्षक होती है। एक ओर क्योतो और नारा के प्राचीनतम मंदिर, महल और उद्यान और दूसरी ओर तोक्यो की गगनभेदी अट्टालिकायें, दिवालों और एक के ऊपर एक जाती हुई कई परतों

वाली सड़कें, सभी पर्यटकों के लिये आकर्षण के केंद्र हैं।

इस नैसर्गिक तथा कृत्रिम सौंदर्य की ओर आकर्षित होने वाले दर्शकों की सुविधा के लिये जापान की सरकार ने भी बहुत काम किया है। सैलानियों की सहूलियत के लिये एक विशेष संस्था (जे० टी० बी०) काम करती है। जापान में जगह-जगह पर और बाहर प्रायः सभी देशों में इसकी शाखायें हैं। ये संस्थाएँ सैलानी-साहित्य छापकर मुफ्त बांटती हैं। उनकी यात्रा, ठहरने और घूमने आदि का प्रबंध जे० टी० बी० का दफ्तर कर देता है। रेल या हवाई जहाज के रिज़र्वेशन के लिये लोगों को भटकना नहीं पड़ता। घूमने के लिये बस-कंपनियों को महीनों पहले से लिखना नहीं पड़ता। सैलानी देशी हों या परदेशी, मोटर-कार में घूमना चाहें तो किराये पर, 10-15 या 20 दिन के लिये नई कार मिल सकती है और इच्छानुसार प्रोग्राम बनाकर वह उसमें घूम सकता है। विदेशी मुद्रा और ख्याति कमाने की दृष्टि से पर्यटन जापान का एक विशेष उद्योग बन गया है।

जापान में सैलानियों के अनेक स्वर्ग हैं। अपनी रुचि, अवस्था, ऋतु और आर्थिक सामर्थ्य के अनुसार उनका चुनाव किया जा सकता है। धार्मिक या सांस्कृतिक महत्त्व के नगर, मनोरंजन के केंद्र, प्रकृति के सौंदर्य-स्थल आदि में विदेशी पर्यटकों का अनंत प्रवाह रहता है। इनमें 'निक्को' एक ऐसा स्थल है जहाँ वास्तविक स्वर्गीय सुख का अनुभव किया जा सकता है। प्रत्येक सैलानी की अपनी कल्पना होती है। सभी स्वर्ग जापान में सहज उपलब्ध हैं।

तोक्यो में मैं अंतराष्ट्रीय केंद्र के चार-सौ कमरे वाले होटल में ठहरा था। जापान के विदेश मंत्रालय के अंतर्गत एक विशिष्ठ संस्था द्वारा इस होटल का संचालन किया जाता है। छः मंजिल की यह इमारत ईबीगावा स्टेशन के पास स्थित है। उसकी बनावट आधुनिक भवन-निर्माण का सुंदर नमूना है। संसार भर के सभी विकासशील देशों से आने वाले विद्यार्थी इस केंद्र में ठहराये जाते हैं। उनमें से कुछ लोग जापानी गवर्नमेंट के विभिन्न देशों से हुई तकनीकी सहायता-संधि के अंतर्गत आकर ठहरते हैं। जिन दिनों मैं इस केंद्र में था उन दिनों वहाँ 44 देशों से आये, 22 साल से 52 साल तक की आयु के स्त्री-पुरुष ठहरे हुए थे। एशिया, अफ्रीका, दक्षिण-अमरीका और पूर्व-योरुप के देशों के लोग वहाँ साथ-साथ थे। वियतनाम, थाईप्रदेश, तुर्की और मिस्र की स्त्रियाँ भी वहाँ थी, जो अधिकतर चिकित्सा संबंधी शिक्षण के लिये आई थीं। वस्तुतः इस केंद्र में पश्चिमी योरुप और संयुक्त राष्ट्र अमरीका को छोड़ प्रायः सभी भूखण्डों और देशों के प्रतिनिधि थे। लोगों के ठहरने के लिये वायु-अनुकूलित कमरे थे जिनमें बहुत ही आरामदेह पलंग थे। भोजन और स्नान का अच्छा प्रबंध था। एक छोटी-सी दुकान थी, जिसमें रोज के उपयोग की चीजें सस्ते दामों में बिकती थीं। दो टेलीविज़न सेट थे जिनपर सुबह से अर्धरात्रि तक लगातार

तरह-तरह के कार्यक्रम दिखाये जाते थे। और फिल्म दिखाने का हॉल तथा एक छोटा-सा पुस्तकालय भी था। एक जापानी उद्यान भी था जहाँ झीलों के पीछे बैठकर लोग उसके सौंदर्य का आनंद ले सकते थे। यह केंद्र जापानी परंपराओं और आधुनिकता के सम्मिश्रण का प्रतीक था। सप्ताह के अंत में केंद्र की ओर से कोई-न-कोई विशेष प्रोग्राम बनाया जाता था जिस में केंद्र के सभी विद्यार्थी बड़ी उमंग से शामिल होते थे। इन प्रोग्रामों में से एक प्रोग्राम 'निक्को' की यात्रा थी।

निक्को तोक्यो से 90 मील दूर है इसलिये लोगों का सुबह साढ़े सात बजे तक चल देना जरूरी था। विविध रंगों की सुंदर बसें केंद्र के बाहर आकर बहुत सुबह खड़ी हो गईं। एक बस में अंदर 70 लोग आसानी से बैठ सकते थे। लाउड-स्पीकर का प्रबंध था। उसकी मदद से गाइड और महिला-संचालक बात कर सकते थे। विभिन्न देशों के क़रीब तीन-सौ विद्यार्थियों को लेकर बस में कुछ अधिकारी हम लोगों के साथ चले। रास्ते में बस की परिचारिका हमारे मन-बहलाव के लिये जापानी गाने सुनाने लगी। ऐसी सुरीली आवाज मानो वसंत में चिड़ियाँ चहचहा रही हों। यद्यपि गाने का अर्थ समझ में नहीं आ रहा था, पर स्वरों के उतार-चढ़ाव से यह स्पष्ट था कि किसी की विरह-वेदना संगीत के सुरों में बिखर कर बह रही है। हमारे जापानी गाइड ने विभिन्न देशों के विशिष्ट गीतों और लोक-गीतों को गाने का आग्रह किया। अफ्रीका के लोग गानों में विशेष अभिरुचि रखते हैं। थाई-प्रदेश का गाना तो बहुत-कुछ दक्षिण भारत के गानों से मिलता-जुलता है। मेरे एक भारतीय मित्र ने तेलुगू का एक लोकगीत और दूसरे ने रवींद्र संगीत का एक अंश गाकर सुनाया और सभी को प्रभावित किया। उस समय मुझे ऐसा लगा कि ऊपरी की विभिन्नता के बावजूद मानव-मन, उसकी आशाएँ और निराशाएँ, उसकी भावनाएँ और विचार, सब का स्रोत, प्रभाव और लक्ष्य एक ही है। प्रेम और विरह, जीवन और मृत्यु, सुख और दुख यह सब देशों की राजनैतिक और भौगोलिक दूरियों को मिटा देते हैं, वास्तव में मानव-मन एक है। हम एक दूसरे के कितने निकट हैं। विश्व-बंधुत्व कोरी कल्पना नहीं, अचल सत्य है—इसका विश्वास मुझे तब हुआ जब विभिन्न देशों से आये विद्यार्थी अपने देश के लोक-गीतों को उस चलती हुई बस में माइक्रोफ़ोन पर गा रहे थे। काफ़ी दूर तक फैली हुई तोक्यो की सड़कों के दोनों तरफ़ सामान से भरी दूकानें दिखाई दे रही थीं। दूकान में दिखावट का सामान शीशों के केसों में सजा हुआ था। मालूम पड़ता था कि इस देश में किसी चीज़ की कमी नहीं है। कितना लंबा है तोक्यो इसका अनुमान बस पर चढ़कर ही लगता है। 40 मिनट तो सड़कों को पार करने में ही लग गये।

बाहर निकलने पर दृश्य बदले। पहाड़ी प्रदेश पर सभी जगह धान के खेत

या बंद-गोभी की क्यारियाँ फैली हुई हैं। खाली जगह बिल्कुल नहीं है। पहाड़ियों के संकरे रास्तों पर भी बेल या क्यारियाँ बिछी हैं। उनके किनारों पर लकड़ी और बांस के सुंदर और छोटे मकान हैं, खेतों में चरती हुई गायें या भैंसें जो अक्सर भारत में दिखाई पड़ती हैं, यहाँ उनका दर्शन दुर्लभ है। सड़कों के दोनों ओर बड़े-बड़े विज्ञापनों के बोर्ड लगे हुए हैं। थोड़ी-थोड़ी दूरी पर कोई छोटा कस्बा या उप-नगर आ जाता है। बीच-बीच में पड़ाव के विशेष स्थान होते हैं। यहाँ बहुत बड़ी दुकान में फल, दूध, चाय, कॉफी या खाने की और चीजें मिल जाती हैं। साके और बियर भी खूब बिकती है।

इन अड्डों पर बसें करीब आधे घंटे रुकीं। लोगों ने बसों से उतर कर अपने जकड़े शरीर को ढीला किया; पैर सीधे किये; कुछ खा-पीकर मन बहलाया। फिर एक दूसरे की तस्वीरें खींचीं और आगे बढ़े। इस तरह के दो-पड़ावों को पार कर हम लोग निक्को के समीप पहुँचे।

जापान में एक कहावत प्रचलित है, 'कहें न तब तक किक्को, जाएँ न जब तक निक्को' अर्थात् जब तक आप निक्को न हो आयें तब तक आपको किसी स्थान के लिये 'शानदार' विशेषण का प्रयोग नहीं करना चाहिये। वास्तव में निक्को में प्राकृतिक-सौंदर्य, पर्वत, वन, सरोवर, प्रपात, ऊँचे-ऊँचे सेगु के पेड़, विश्व-प्रसिद्ध बौद्ध मंदिर, घूमने के लिये ठण्डी सड़कें, रहने के लिये होटल—सभी कुछ एक ही स्थान पर हैं।

निक्को में प्रवेश करते ही हम लोगों को साल के ऊंचे-ऊंचे वृक्षों से सजी सभी सड़कों को पार करना पड़ा। हमारे जापानी गाइड ने बताया कि वे पेड़ प्रायः तीन-सौ वर्ष पुराने हैं। इनकी ऊँचाई करीब तीन-सौ-फ़ीट होती है और इनकी लकड़ी अत्यंत मूल्यवान होती है। सड़क के दोनों किनारों पर ही इन वृक्षों की पंक्तियाँ नहीं थीं, पीछे भी इनके विशाल वन थे। उनमें जंगली जानवर अवश्य रहते होंगे। वातावरण में शीत बढ़ने लगा। सड़क पर हल्की-हल्की बूँदें पड़ रही थीं। चलती हुई गाड़ी में बैठकर वातावरण आकर्षक लग रहा था। वन समाप्त होने पर हम लोगों के सामने एक पर्वत-माला आ गई। इस पर चक्करदार घूमती सड़क और उसके नीचे मेपल के सुनहरे और सुर्ख फूलों से लदे पेड़ और ऐसे पेड़ों से लदी घाटी अत्यंत सुंदर मालूम पड़ती थी। मानो प्रकृति ने होली खेली हो और चारों ओर अबीर, गुलाल बिखेर दिया हो। ऐसी रंगों की भरमार मैंने जीवन में पहले कभी नहीं देखी थी।

पहाड़ की चोटी पर एक विशाल झील है जिसे चुजैनजी कहते हैं। झील के किनारे स्थित रेस्तराँ में रुककर हम लोगों ने जल-पान किया, तस्वीरें खींचीं और भेंट देने के लिए उपहार खरीदे। फिर एलीवेटर पर बैठ कर पहाड़ी के नीचे उतरे। वहाँ एक सुरंग थी। उसके पार जाने पर अति भव्य दृश्य उपस्थित हुआ।

वहाँ कई सौ फ़ीट की ऊँचाई से पानी गिर रहा था।

निक्को के प्रसिद्ध बौद्ध-मंदिर में जाने के लिये हम लोग जिस सड़क पर गये वह बहुत संकरी थी। भय लगता था कि कहीं गाड़ी उलट न जाये। ड्राइवर काफ़ी तेज़ रफ़्तार से जा रहा था। पर गाड़ी पर उसका पूरा नियंत्रण था। चलते-चलते हमने सिंदूरी-रंग की लकड़ी का एक पुल देखा। उसके नीचे एक पहाड़ी नदी बह रही थी। थोड़ी ही देर में हम लोग निक्को के प्रसिद्ध मंदिर में पहुँचे। साल के विशाल पेड़ों की छाया में से होते हुए हमने मंदिर के मुख्य द्वार में प्रवेश किया। वृक्षों में कुछ तो 120 फीट ऊंचे थे। शीतकाल में जब इन पर बर्फ़ के फाहे जम जाते हैं, तब बड़ा ही सुंदर दृश्य उपस्थित होता है। मंदिर में घुसते ही एक ओर पाँच मंज़िल ऊँचा एक पगोडा है। इसकी मंज़िलें—पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश, पाँच तत्वों की प्रतीक हैं। पहली मंज़िल की छत पर ज्योति के प्रतीक और जानवरों के चित्र हैं। यह पगोडा जापान की सबसे सुंदर इमारतों में गिना जाता है।

पगोडा निर्माण की कला भारत में विकसित हुई। यह भारतीय स्तूपों का विकसित रूप है। इन स्तूपों में पहले बुद्ध या उनके शिष्यों के पार्थिव अवशेष या भस्म रखी जाती थी। इनमें साँची का स्तूप सबसे पुराना है। इसमें एक गुंबद और उसके बाहर चार-दीवारी है जिसमें साँची का प्रसिद्ध तोरण बना हुआ है। उसका दूसरा नमूना गार्ली का स्तूप है। चौथी शताब्दी से सातवीं शताब्दी के बीच सबसे सुंदर नमूना अजंता का है। नालंदा स्तूप का स्वरूप मध्य पश्चिम से होता हुआ चीन पहुँचा। चीन के स्तूप कई मंज़िलों के बनाये जाते हैं। उन पर वहाँ की स्थापत्य कला का प्रभाव भी है। वहाँ से कोरिया और फिर जापान पहुँचते-पहुँचते पगोडा का रूप बहुत-कुछ बदलता गया है। जापान के पगोडे कई मंज़िलों के होते हैं। उनकी छत पर छज्जे होते हैं। वे गोलाकार न होकर सीधी रेखाओं में बनते हैं। इन सब पगोडाओं में निक्को का पगोडा सब से सुंदर और महान कला-कृति समझा जाता है।

सीढ़ियों पर चढ़ने के बाद हम जापान के प्रसिद्ध तोकोगू मंदिर में प्रवेश करते हैं। यह आईयास तोकूगावा की स्मृति में सातवीं शताब्दी में बना था। कहते हैं, इसे बनाने के लिये 15 हज़ार मज़दूरों ने 20 साल तक लगातार काम किया और इसके लिये जापान-भर के सामंतों ने पैसा, सामग्री और मज़दूर जुटाए। पुराने ज़माने में इन सीढ़ियों को पार कर साधारण लोग नहीं जा सकते थे किंतु अब तो देश-विदेश के लोग इसके अंदर सभी जगह पहुँच सकते हैं। सीढ़ी के ऊपर 'तोरी' है, जो शायद संस्कृत के तोरण शब्द का जापानी अपभ्रंश है। यह एक बहुत सुंदर दरवाज़ा है। जापान में 'मोन' का अर्थ है दरवाज़ा और यह पहला दरवाज़ा 'नीयोमोन' कहलाता है। इसके दोनों तरफ़ दो-दैत्यों की भयानक

मूर्तियाँ हैं। इनकी काली भौहों के नीचे चमकती हुई आँखें अत्यंत भयानक आकृति प्रस्तुत करती हैं। कहते हैं, आपत्तियों को डराने के लिये इन्हें इतना भयावह बनाया गया है। अंदर बाईं ओर पुस्तकालय है, जिसमें सात हजार पुस्तकें हैं। बीच में दो माल-खाने हैं, जहाँ प्राचीन समय की वेश-भूषाएँ, आभूषण, खाने-पीने के सामान रखे हुए हैं। माल-खाने के बाहर की दीवार पर हाथी, बंदर, बिल्ली और बहुत से पशु-पक्षियों के चित्र हैं। जापान में हाथी नहीं होते, यह शायद भारतीय हाथियों की प्रतिमूर्ति हैं। कलाकार ने निश्चय ही हाथी के बारे में सुना होगा, उसको स्वयं देखा नहीं होगा, इसलिये इनकी आकृति वास्तविक हाथियों से भिन्न है। पास ही एक अस्तबल है। उसकी दीवार पर तीन चतुर बंदरों की मूर्तियाँ हैं। इनमें एक बंदर कानों पर हाथ रख कर कह रहा है, 'बुरा न सुनो,' दूसरा आँखों पर हाथ रख कर संदेश दे रहा है, 'बुरा न देखो,' और तीसरा मुँह पर हाथ रख कर कह रहा है, 'बुरा न बोलो।' गांधी जी की कुटिया में भी इन तीन बंदरों की मूर्तियाँ थीं। सारे संसार में इन तीन बंदरों की लाखों मूर्तियाँ पाई जाती हैं।

ऊपर 'योमेईमोन' का द्वार है यह निक्को की शानदार वास्तुकला का सर्वोत्तम नमूना है। इसकी चित्रकारी को देखने में पूरा दिन लग सकता है। चाहे कितनी ही बार इसे देखें, इसकी सुंदरता से मन नहीं ऊबता। इसमें दैत्यों, कुत्तों, चीनी स्त्रियों तथा अन्य वस्तुओं की तस्वीरें एक उमड़ते हुए बादल की तरह चारों ओर छाई हुई हैं। प्रकृति की सभी प्रकार की चीजों को इस 'योमेईमोन' के द्वार पर लाकर सजा दिया गया है। यह शानदार द्वार संसार के महान द्वारों में गिना जा सकता है। जापानी गाइड ने बताया कि निक्को के मंदिरों और पूजा घरों की आजकल 70 अरब येन कीमत होगी। कहते हैं, कि इन मंदिरों में लगी हुई लकड़ी को यदि एक सिरे से दूसरे सिरे तक बिछाया जाए तो वह तीन सौ तीस मील तक फैल जाएगी। इनके ऊपर सोने की चौबीस लाख उनासी हजार नौ सौ परतें लगी हुई हैं। मंदिर में अधिकतर सुनहरे और सिंदूरी रंग का प्रयोग किया गया है।

निक्को से निम्न, प्रकृति से सामीप्य स्थापित करने के लिये अधिक उपयुक्त स्थान हकोने है। वहाँ की यात्रा के लिये एक दिन शाम को तोक्यो से मैं बंदरगाह—'योकोहामा' गया। बाजारों में घूमने के बाद करीब 9 बजे स्टेशन पर वापस आया। यह सोच कर कि तोक्यो में खाना न मिलेगा, क्योंकि वहाँ पर सात-आठ बजे सब बंद हो जाते हैं, एक दुकान में जाकर खाने लगा। थोड़ी देर में मेरे पास वाली मेज पर दो जापानी युवक और एक लड़की आ कर बैठ गये। लड़की की नाक और आकृति बहुत कुछ भारत के पहाड़ी प्रदेशों की स्त्रियों से मिलती थी। यदि वह नैनीताल या गढ़वाल में साड़ी पहन कर घूमे तो शायद लोग उसे भारतीय समझेंगे। दोनों लड़के काफी मस्ती से बात कर रहे थे। बीच-

बीच में गुनगुनाने भी लगते थे। कभी-कभी कुतूहल से मेरी ओर देखने लगते थे। मैं उनके पास जाकर बोला—'मैं इंदोजिन हूँ'। तीनों खड़े हो गये, झुक कर अभिवादन किया और मुझे उसी मेज़ की चौथी कुर्सी पर बैठने को कहा। दोनों लड़के गाने-बजाने के शौक़ीन थे। एक ने बैंड कम्पनी खोल रखी थी। दूसरा कँवरे में गाना गाने जाता था। लड़की दोनों की मित्र थी। वे योकोहामा में किसी प्रोग्राम में भाग लेने के बाद तोक्यो लौट रहे थे। उन्होंने भारतवर्ष और ताजमहल के बारे में टेलीविज़न पर जानकारी प्राप्त की थी। मैंने भी उन्हें कुछ बातें बतलाईं। काफ़ी देर तक बात करने के बाद हम सब एक ही गाड़ी से तोक्यो के लिये रवाना हुए। तोक्यो पहुँच कर उन्होंने आग्रह किया कि वे मुझे पहुँचाने होटल तक साथ चलेंगे। मैं उन्हें अपने कमरे में ले गया। अब तक हम में आत्मीयता का भाव जागृत हो गया था। लड़की ने कहा—'मेरे यह दोस्त अच्छा गाना गाते हैं।'

उसके दोस्त ने कहा—'मुझ से अच्छा तो यह गाती हैं।'

मैंने दोनों से गाने को कहा—शायद वे मेरे कहने का इतज़ार ही कर रहे थे। दोनों ने मिल कर और अलग-अलग बड़ी ही सुंदर लय में जापानी गीत सुनाए। उन गानों का अर्थ मैं नहीं समझ सका। उन में एक अजीब उदासी और पीड़ा का भाव उठ रहा था, मानो किसी निर्जन प्रदेश में कोई गा रहा हो और पहाड़ों से टकरा कर उसका स्वर वापस आ रहा हो। अनजाने ही अपना सब कुछ दिखाने की भावना और उसके बारे में प्रशंसा पाने की इच्छा जापानियों का राष्ट्रीय गुण है।

चलने से पहले मैंने उस लड़की को कहा, 'आप बहुत-कुछ भारतीय लड़की मालूम पड़ती हैं' और उसकी ओर उंगली उठा कर इशारा करते हुए उसके दोस्तों से कहा, 'इंदोजिन'।

दोनों खिलखिला कर हँस पड़े।

उनमें से एक बोला, 'इंदोजिन'' ने'''निहानजिन'''अर्थात् भारत की नहीं, जापान की लड़की है। शायद वह अपनी प्रेमिका को जापानी लड़की के रूप में ही अपनाना चाहता था, विदेशी लड़की के रूप में नहीं।

मैंने उसे चिढ़ाते हुए कहा, 'ने'''ने'''इंदोजिन'''देस' 'नहीं, नहीं यह तो हिंदुस्तानी लड़की है' और हम तीनों खिलखिला कर हँस पड़े और लड़की के चेहरे पर लाज की एक लहर उमड़ आई। उसने अपना सीधा हाथ उठाकर अपने होंठ और नाक को दबा लिया। जापान में यह लज्जा दिखाने का तरीक़ा है।

दूसरे दिन मुझे हकोने जाना था। इतने में देखा पिछली रात को मिली, भारतीय-सी लगने वाली लड़की युवक-आवास के दरवाज़े में चली आ रही है। मैंने सोचा शायद कोई चीज़ भूल गई होगी। उसने झुक कर अभिवादन किया। मैंने पूछा, 'इस समय आप यहाँ?'

उसने मेरी ओर एक पैकेट बढ़ा दिया और कहा, 'शायद आप हकोने घूमने जा रहे हैं। मैंने सोचा यहाँ खाने के लिये कुछ बना लाऊँ।'

मैंने जब पैकेट खोल कर देखा तो उसमें चावल के गोले के अंदर समुद्र की घास थी जो जापान में बड़ी स्वादिष्ट समझी जाती है। मैंने उसे धन्यवाद देते हुए कहा, 'आपने व्यर्थ ही यह तकलीफ की।'

उसने कहा, 'हम लोग जब कभी पिकनिक पर जाते हैं तो इन गोलों को ही ले जाते हैं और इन्हें सूखी मछली के साथ खाते हैं। पर शायद आप तो मछली खाते नहीं इसलिये आपके लिये यह गोले ही बना कर लाई हूँ।'

इस अनुकंपा से प्रभावित होकर मैंने भरे स्वर में कहा, 'आपका बहुत-बहुत धन्यवाद।'

उसने बड़ी-बड़ी आँखों से मेरी ओर देखा और कहा, 'वाताशीवा-इंदोजिन देस' अर्थात् 'मैं तो हिंदुस्तानी स्त्री हूँ' और अपनी सफेद दाँतों की पंक्ति खोल कर वह हँस पड़ी। मैंने झुक कर उसका फिर अभिवादन किया। उस भारतीय-सी लगने वाली जापानी लड़की की निर्मल भावुकता की कंकड़ी ने मेरे मानस सरोवर पर अनंत लहरियों को हिलोर दिया।

× × ×

हकोने जाने के लिये तोक्यो से ओदावारा तक रेल से जाना पड़ता है। ओदावारा पहुँच कर प्राइवेट रेलवे या बस से हकोने झील तक पहुँचने के दो रास्ते हैं। एक रास्ता सीधा झील के किनारे से जाता है। दूसरा, पहाड़ों की चोटियों और घाटियों को लाँघता हुआ केबिल-कार और रोप-वे से झील के किनारे पहुँचाता है। अधिकतर लोग झील तक जाने के लिये केबिल-कार और रोप-वे का उपयोग करते हैं और लौटते समय बस पर झील के किनारे-किनारे वापिस आ जाते हैं। जिसके पास कार होती है, उसके लिये तो इस सुरम्य प्रकृति के संग्रहालय के अनेक अनूठे दृश्य सुलभ होते हैं।

केबिल-कारों में बैठकर पहाड़ों की ऊँची चोटियों पर चढ़ने में बड़ा सुखद अनुभव होता है। हर क्षण आप पृथ्वी के धरातल से ऊपर ही उठते जाते हैं। आस-पास की पहाड़ियों और घाटियों को देख कर एक सिहरन शरीर में दौड़ जाती है। कई हज़ार फ़ीट ऊँची चोटी से बीच की गहरी और चौड़ी घाटियों को पार कर दूसरे पर्वत शृंगों पर पहुँचने के लिये लोहे की रस्सियों में लटके बक्से होते हैं। इनमें अधिक-से-अधिक पाँच लोग बैठ सकते हैं। ये डिब्बे बिजली द्वारा लोहे की रस्सियों पर खिसकते हुए अमित ऊँचाई पर आगे बढ़ते हैं। नीचे की ओर दृष्टि डालने से हज़ारों फीट गहरी खाई नज़र आती है। आस-पास पतली रेखा-सी सड़कें दिखाई पड़ती हैं। उन पर दौड़ती हुई बसें और कारें बच्चों के खिलौनों की तरह लगती हैं। नीचे कहीं पर घने वन और कहीं पर गंधक की

सुलगती पहाड़ियों से धुएँ का बादल दिखाई देता है। बीच-बीच में झील और तालाब दिखाई पड़ते हैं। प्रकृति के इस विराट सौंदर्य के सामने मनुष्य अपनी क्षुद्रता से आतंकित हो उठता है। पर दूसरे ही क्षण उसे अपनी तक्नीकी उपलब्धियों का ध्यान आ जाता है जिनके फलस्वरूप वह दुर्गम पर्वतों और भीषण वनों को मिनटों में लाँघ जाता है। पर अशक्त और सशक्त, महाबली और दुर्बल मानव अपने को प्रकृति के विजेता के रूप मे नहीं देखता। उसके लिये प्रकृति वरदा देवी है जो अपने अमित रहस्यो, सपदाओं और शक्तियों को मानव की उपासना के बदले वरदान के रूप मे दे देती है। *प्रकृति को विजिता नहीं वरदा* रूप में देखने का जापानी दृष्टिकोण मुझे अधिक भाता है।

हकोने की पहाड़ियो से घिरी झील बहुत अच्छी लगती है। वह बहुत लबी और काफी चौड़ी है। खुले मौसम मे वहाँ से फूजी पहाड की कोनाकार चोटी दिखाई पडती है। फूजी जापान मे पवित्रता, महानता, शाश्वत-शक्ति और सौदर्य का प्रतीक है। वह जापानियों की कल्पना, आह्वान, कविता और चित्रकारी का अनत स्रोत है, वह फूजी पर्वत नही, वरन् फूजीसान अर्थात् आदरणीय फूजी है। हकोने के निर्मल जल मे प्रतिबिंबित फूजीसान के निर्विकार सौंदर्य को देखने और सराहने लाखो जापानी हर साल हकोने की परिक्रमा करते हैं।

जापान के निवासी

•

जापान की सबसे बड़ी निधि वहाँ के लोग हैं, सुसंस्कृत, संयत, अध्ययनशील, परिश्रमी, कला-प्रेमी। उनके अपने व्यक्तिगत गुण-दोष भी हैं। वेश-भूषा और रहन-सहन की अनुरूपता केवल दिखावा है। अधिक-से-अधिक वह उनकी राष्ट्रीय एकता का प्रतीक मात्र है। सतह से नीचे देखने पर उनकी बहुरूपता उतनी ही व्यापक और स्पष्ट है, जितनी किसी और देश के निवासियों की। अपने छह सप्ताह के प्रवास में, मैं विभिन्न वर्गों के अनेक जापानी नर-नारियों से मिला। वे अवस्था में 16 साल से लेकर 60-65 साल की उम्र तक के थे। समय और अवसर के अनुकूल मैंने उन्हें गहराई से देखने की कोशिश की। निःसंदेह इतने थोड़े सम्पर्क और समय में किसी भी पुरुष या स्त्री को भली-भाँति समझना सम्भव नहीं है। किन्तु फोटोग्राफी की प्लेटों की तरह मेरे मन पर इनकी जो छाप पड़ी और देश-काल की दूरी के बावजूद जो आज भी मेरे हृदय पर उभर रही है उसके कुछ रेखा-चित्र यहाँ प्रस्तुत हैं—

मेरे जापानी मित्रों को किसी तरह की उलझन न हो इसलिये मैंने उनके और उनसे मिलने के स्थानों के नाम में थोड़ा-बहुत परिवर्तन कर दिया है। वैसे ये चित्र उतने ही सच्चे या अच्छे-बुरे हैं, जितना मेरे अन्तर की फिल्म और समझ का लेन्स।

जापान सरकार के विदेश-विभाग ने मेरी जापान यात्रा का प्रबंध किया था। चूँकि जापान में अधिकतर लोग अंग्रेज़ी बोलने या विदेशियों द्वारा बोली गई अंग्रेज़ी को समझने में कठिनाई का अनुभव करते हैं इसलिये विदेश-विभाग की ओर से मुझे एक जापानी साथी मिल गया था, जो न केवल एक दुभाषिये का काम करता था, बल्कि अधिकतर मेरे साथ रह कर मेरी सुविधा और मेवा का भार भी उठाता था। इसके लिये उसे क़रीब 30 रुपये रोज़ अपनी सरकार से मिलते थे। इसके अतिरिक्त उसे कुछ फुटकर धन-राशि दे दी गई थी, जिससे वह मेरे आने-जाने आदि का ख़र्च उठा सके। मेरे इस जापानी साथी का नाम 'मोरी' था। मोरी 'सान'[1] की ऊँचाई पाँच फुट चार इंच, बदन इकहरा, आँखें

---

1 जापानी भाषा में 'सान' शब्द कुछ-कुछ 'जी' की तरह प्रयुक्त होता है। यह पुरुष, स्त्री, लड़का लड़की, ऊँच-नीच सभी नामों के लिए प्रयोग में आता है। जापान में नाम के पीछे 'सान' लगाना शिष्टता का प्रतीक समझा जाता है और बड़े छोटे सभी एक दूसरे के नाम के आगे 'सान' लगाकर बोलते हैं।

जापानियों के हिसाब से बड़ी, चेहरा लम्बा, आकृति मंगोलियन, बाल बड़े और छोटे। उसे देखकर एक साधारण जापानी की तस्वीर आंखों के सामने आ जाती है। पर उसमें दो जापानी विशेषताओं का अभाव था। एक तो उसकी आँखें चश्मे से विभूषित न थीं जबकि प्राय: 70-80 प्रतिशत जापानी पुरुष चश्मे का प्रयोग करते हैं। दूसरे उसके दाँतों की सफेद तरतीब-दार क़तार अधिकतर जापानियों की बेडौल, बे-तरतीब दन्तमाला से भिन्न थी जिसे सोने या चाँदी से मंढ़कर मुखश्री में वृद्धि की जाती है।

अपने अधिकतर देशवासियों की तरह सैकीसान कुछ ही दिन पहले तोक्यो में किसी अच्छे काम की तलाश में आया था। संयोग से उसे पता चला कि विदेश-विभाग को अँग्रेज़ी जानने वाले एक जापानी साथी की आवश्यकता है। काम छह सप्ताह के लिये था और जापानी वेतन-स्तर को देखते हुए पन्द्रह सौ येन रोज की नौकरी बुरी न थी, इसलिए उसने मेरा सरकारी-साथी बनना स्वीकार कर लिया था।

पहले दिन जब सैकीसान मुझसे मिला तो उसने बड़े विनम्र भाव से झुक-कर अभिवादन किया। टैक्सी में बैठ कर जब हम अपने गन्तव्य का 30-35 मिनट का रास्ता तय कर चुके और मेरे साथी ने अपनी ओर से कोई जिज्ञासा प्रगट नहीं की तब मैंने ही शिष्टतावश वातों का सिलसिला जारी किया। सैकीसान अपनी ओर से कोई बात नहीं छेड़ता था। मैंने सोचा कि शायद अवस्था में कम होने के कारण वह मुझसे झिझक रहा है, पर बाद में मेरा यह भ्रम दूर हो गया, क्योंकि अपने अधिकतर देशवासियों की तरह वह भी अपनी ओर से अधिक बात करने का आदी नहीं था। हाँ, मेरी जानकारी के लिये कभी-कभी किसी खास चीज की ओर वह मेरा ध्यान भले ही खींचे किन्तु प्राय: पूछने पर ही नपा-तुला उत्तर देता था। नवपरिचित को बहुत-सी जानकारी स्वत: देकर आश्वस्त करना भारतीय शिष्टता की विशेषता समझी जाती है। किन्तु जापानी वाचालता को शिष्ट नहीं समझते। उनकी हार्दिकता शब्दों में नहीं, उनके सद्व्यवहार से व्यक्त होती है। भावों के अतिरेक या शब्दों के प्रवाह से वे अभ्यागत को किसी प्रकार का कष्ट नहीं पहुँचाते। वे उसकी सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखते हुए भी उसके भावों और विचारों में बाधक बनना बुरा समझते हैं।

सैकीसान कुछ महीने पहले तक रूस के साइबेरिया प्रदेश में दो-साल तक लकड़ी और लट्ठों का आयात-निर्यात करने वाली एक जापानी फर्म में काम करता था। वह रूसी भाषा बोल सकता था और उसने अर्थशास्त्र में विश्वविद्यालय से उपाधि प्राप्त की थी। व्यापार का अनुभव भी उसे था। फिर भी कार्लमार्क्स, साम्यवाद या सोवियत रूस के बारे में उसने कभी अपनी दिलचस्पी या जानकारी का प्रदर्शन नहीं किया। उसके ऊपर रूस की विचार-धारा का क्या प्रभाव पड़ा,

मैं नहीं जानता। लेकिन 40-45 दिन तक नित्य आठ-आठ घंटे साथ रहने पर भी उसने कभी कोई आभास न दिया कि वह सोवियत रूस की किसी विशेषता से प्रभावित हुआ है। सम्भव है कि अच्छा जापानी होने के नाते उसने अपने विचारों और मान्यताओं को मुझ पर लादना ठीक न समझा हो। मौन, गम्भीरता और उपलेपन, दोनों का ही आवरण हो सकता है।

सैंकीसान की उम्र लगभग 26 साल की है। वह ओसाका का रहने वाला है। वहीं उसके माता-पिता रहते हैं। दो भाई और दो बहनें हैं। एक बहन का विवाह हो चुका है। दूसरी क्योतो विश्व-विद्यालय में अमरीकी साहित्य का अध्ययन कर रही है। इसके अलावा सैंकी ने अपने परिवार के बारे में मुझे कुछ नहीं बताया। एक-आध बार जब मैंने उसके तोक्यो स्थित निवास के बारे में पूछा तो उसने संक्षेप में केवल यह कहा कि वह अपनी मौसी के साथ रहता है। उसके मौसेरे भाई व्यापार करते हैं। व्यापार शब्द का जापानी भाषा में बड़ा व्यापक अर्थ है। होटल में काम करने वाले, फ़ैक्ट्री के मज़दूर, सरकारी दफ़्तरों के बाबू अपने को व्यापार में लगा बताते कहते हैं।

सैंकीसान सुबह आठ-साढ़े आठ बजे मेरे निवास-स्थान पर आ जाया करता था। वहाँ आकर सूचना-केन्द्र के लाउडस्पीकर पर कहला देता था कि वह मेरा इंतज़ार कर रहा है।

थोड़ी-बहुत देर से जब मैं नीचे के बरामदे में पहुँचता तो वहाँ पर उसे एक छोटी-सी बैंच पर बैठा पाता, उसके सामने एक सुन्दर जापानी उद्यान था। उद्यान के तालाब में रंग-बिरंगी मछलियाँ थीं जिन्हें वह ध्यान से देख रहा होता था। मुझे देख कर वह उठ कर हाथ मिलाता और सिर झुकाकर अभिवादन करता। अपने जापानी ज्ञान को दिखलाने के लिये मैं कहता 'ओहायो गुजाईमास' और वह मुस्करा कर फिर दो-तीन बार झुककर मेरे अभिवादन को स्वीकार करता और फिर हम लोग अपने कार्यक्रम के अनुसार बाहर निकल आते।

निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने पर वह फिर वहाँ के अधिकारियों से बड़ी विनम्रता से हल्के स्वर में बात करता। कभी-कभी लम्बी बातचीत के बाद वह मेरे आने के बारे में जानकारी देने में सफल होता। फिर मुझे किसी विशेष अधिकारी के पास ले जाता। वहाँ पहले अपना परिचय देता, फिर मेरा परिचय कराता और तब काम की बात शुरू होती। वह शब्दों के लिये अटकता हुआ रुक-रुक कर अँग्रेज़ी बोलता था। कुछ दिनों बाद उसकी कठिनाई को दूर करने के लिये मैं स्वयं उपयुक्त शब्द बोल देता था। वह 'हाई-हाई' कह कर उसे अपने अर्थ का द्योतक होने की स्वीकृति दे देता। इस तरह की भेंट के बाद बार-बार झुकने का क्रम चलता। बैठक से उठने के समय से लेकर इमारत के बाहर जाने तक कम-से-कम 10-15 बार तक उसे अपनी कमर को 45 अंश तक झुकाना

पड़ता। तब कहीं बाहर निकल कर मुक्ति की सांस खींचता-सा मुझे टैक्सी में बिठाकर वह मेरे साथ चल देता।

अपने देश में अनजाने लोगों से चन्द मिनटों में निकटता स्थापित कर लेने का मुझे अभ्यास है। दस मिनट के परिचय के बाद ही लोग घर-द्वार और परिवार के बारे में पूछने और बताने लगते हैं। किन्तु इस रहस्यमय जापानी साथी ने अपने तीन-चार सौ घन्टों के सामीप्य में भी मुझसे इतना विराग रखा जितना दो अपरिचितों के बीच रहा करता है। यों उसके व्यवहार में अत्यंत विनम्रता थी। मैं उससे जो कुछ कहता उसे पूरा करने की वह भरसक कोशिश करता। फिर भी हम दोनों के बीच आत्मीयता का कोई भाव नहीं जागा। भावुकता, शायद उसमें थी ही नहीं। कभी-कभी उसको अपने नजदीक लाने की विकलता पर मैं तिलमिला उठता था किन्तु शिष्टतावश अपनी झुंझलाहट अन्तर में ही पी जाता था।

अपने जन्म-स्थान ओसाका में आने पर सैकी ने जापान के नग्न-नृत्यों के बारे में मुझे बताया। वहाँ की एक प्रसिद्ध नृत्यशाला में वह मुझे ले गया। नग्न-नृत्यों को देखकर वह अत्यंत सन्तोष और सुख का अनुभव कर रहा था। उसके शांत मुख पर हँसी की हल्की-सी लहर उठकर निकल जाती थी। दो-ढ़ाई घन्टों के उस प्रोग्राम में मेरे पूछे बगैर उन पात्रों के बारे में कुछ बतलाना उसने ठीक न समझा। कदाचित् जापानी परम्परा के अनुसार कला और सौन्दर्य का रस हर आदमी अपनी-अपनी प्रकृति और पृष्ठभूमि के अनुसार ग्रहण करता है।

सैकीमान ने मुझे एक दिन बतलाया कि उसके जीवन में लगभग पन्द्रह प्रेम-कांड हुए हैं। मैंने उससे कहा कि पन्द्रह प्रेम-कांड रचकर उसने खूब आनंद लिया है।

"नहीं मेरे अनुभव तो अत्यंत सीमित हैं। मेरे साथ के लोगों के अनुभव मुझसे कहीं आगे हैं।"

मैंने पूछा "विवाह के पहले इस तरह के प्रेम-कांडों को आपके समाज में बुरा नहीं समझा जाता?"

उत्तर मिला, "विवाह के बाद जापानी दम्पति एक दूसरे के अविवाहित जीवन के बारे में जिज्ञासा नहीं करते। वह उनका व्यक्तिगत रहस्य होता है। उसे जानना या उनके बारे में बतलाना अनुचित समझा जाता है। विवाह के बाद जापानी अपनी पत्नियों से पूर्ण पातिव्रत्य की आशा करते हैं और प्रायः सभी पुरुषों को यह सुलभ होता है।"

मैंने फिर पूछा, "क्या पत्नियाँ भी अपने पतियों से ऐसी ही आशा करती हैं?"

कुछ रुककर उसने कहा, "हो सकता है। परन्तु पुरुष की अपनी दुनिया है।

व्यापार और बाहर के जीवन में उसे स्त्रियों से मिलने के बहुत से अवसर आते हैं। उनके बारे में पत्नियों की ओर से प्रश्न-शंकाएँ और बाधाएँ नहीं उठाई जातीं। ऐसा करना पत्नी के लिये अनुचित होता है।"

जीवन में अपनी-अपनी सीमा बनाए रखने की यह अच्छी व्याख्या थी। मैंने इस प्रश्न पर उस समय भी और उसके बाद कई बार सोचा। मेरी आँखों के सामने उन शांत, विनम्र और दबी हुई जापानी स्त्रियों के चित्र उभरने लगते हैं जिन्हें मैंने रेस्तराँओं में चाय का प्याला बनाते, रेस्तराँ में प्लेटों को सजाते, खचा-खच भरी रेलगाड़ियों में पुरुषों के बीच सकुचाई हुई और अपने पति के सामने गंभीर, उदास मुद्रा में जाते हुए देखा है। नाटकघरों और नाच-घरों में बैठी आकर्षक गेइशाओं का तथा दुकानों पर खड़ी मशीन की गुड़ियों की तरह सिर झुका-झुकाकर स्वागत करती हुई स्त्रियों का भी ध्यान हो आता है। भारतीय परम्पराओं से दबी नारी के जीवन के प्रति कवियों की संवेदना रही है लेकिन जापानी स्त्रियों की दशा पर शायद उन्हें रोना आ जाए। यह 'आँचल में दूध' और 'आँखों में पानी' की कहानी नहीं। नारी जाति की हीनता का प्रदर्शन जापान में स्थान-स्थान पर मिलता है। पुरुष स्वामी है। स्वतन्त्र है। मदहोशी में वह अपना संयम तोड़ सकता है। किन्तु स्त्री सदा उसकी गृहिणी है। उसके परिवार की परम्पराओं की पोषक, उसकी मर्जी की गुलाम। लकड़ी और बाँसों के बने मकानों की दीवारें उसके लिये लोहे की सलाखों से कहीं अधिक मजबूत हैं।

शायद मैं भावुकता में बह गया। पर यह निर्विवाद है कि अधिकतर जापानी पुरुषों ने सैंकीसान की तरह नारी के प्रति अपने परम्परागत मार्गों को निःसंदेह स्वीकार कर लिया है। उनके लिये नारी एक सुनहरी गुड़िया है, आँखें नचाती, मटकाती हुई। उसे खरीदा जा सकता है, सँवारा जा सकता है और शीशे के केसों में बन्द कर ताकोनोमा की शोभा बनाया जा सकता है।

इस दृष्टिकोण का ज्वलन्त प्रमाण मुझे तब मिला, जब अपने जापान-प्रवास में क्योतो में मुझे सैंकीसान की छोटी बहन से मिलने का संयोग हुआ। मैं पहले कह चुका हूँ कि वह बीस-बाईस साल की लड़की क्योतो के प्रसिद्ध विश्व-विद्यालय में अमरीकी साहित्य का अध्ययन कर रही थी। उसे भारतीय इतिहास की अच्छी जानकारी थी। इसलिये अपने भाई से एक भारतीय के साथ रहने की बात जब उसने सुनी तो उसे मुझसे मिलने और बात करने का कुतूहल हुआ। सैंकीसान ने क्योतो के रास्ते में मुझसे कहा कि मेरी छोटी बहन आपको क्योतो के मन्दिरों, महलों और उद्यानों के बारे में अधिक अच्छी जानकारी दे सकेगी। वह वहाँ पिछले पाँच साल से पढ़ रही है। बड़े हर्ष से उसके साथ क्योतो घूमने की बात को मैंने स्वीकार कर लिया। सैंकी की बहन ने सैंकी को जिस जगह मिलने के

लिए कहा था वहाँ काफी चक्कर लगाने के बाद मिली। इसमें किसका दोष था मैं नहीं जानता। किन्तु जब वह अपनी बहन से मिला तो उस पर बरस पड़ा। उसने अपनी भाषा में उससे जो कुछ कहा उसका अर्थ मैं ठीक-ठीक नहीं समझ सका। स्पष्टत: वह उसे भिड़क रहा था। मैंने तनाव को कम करने के लिये सुझाव दिया कि किसी जगह बैठकर कुछ खा-पी लिया जाए क्योंकि उस समय दोपहर के 12 बज चुके थे। रेस्तराँ में बैठकर उसकी बहन ने अमरीकी साहित्य और इतिहास के बारे में बहुत-सी बातें कीं। सैकी जितना मौन उसकी बहन उतनी ही प्रगल्भ। उसे जीवन के प्रति जिज्ञासा थी। बड़े मृदुल और विनम्र स्वर में उस जिज्ञासा को व्यक्त करने का उसका अपना ढँग था। जब वह मुझसे बात करती तो सैकी भावहीन मुद्रा में चुपचाप बैठा रहता था। भाई और बहन के साथ मैंने क्योतो के कई विख्यात ऐतिहासिक स्थानों की सैर की। वह लड़की मुझे अपनी जानकारी के अनुसार बहुत कुछ बताती चलती थी, पर जगह-जगह उसको अपने भाई की घुड़की और भिड़की सुननी पड़ती थी और वह भी प्राय: अकारण। एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने के लिये पैदल चलने का निश्चय होता, लेकिन यदि दूरी लड़की द्वारा अनुमानित दूरी से अधिक होती तो उस बेचारी को डाँट पड़ती। यदि किसी ऐसे मन्दिर में पहुँचते जहाँ दोपहर के समय प्रवेश बन्द रहता तो पहले से वह न जानने के लिये भी उसे डाँट का भागी होना पड़ता। उन दोनों के बीच निश्चय ही एक खाई थी; एक स्पष्ट तनाव था, जिसने क्योतो के सांस्कृतिक स्थानों को देखने का मजा किरकिरा कर दिया था। इस सबके में मैं अपने कौतूहल को न रोक सका। मैंने सैकीसान की बहन से पूछा, 'जापानी परिवार में स्त्रियों का क्या स्थान है?' वह मेरे प्रश्न की वक्रता को समझ गई। उसने बड़े स्वाभाविक ढँग से कहा, 'हम लोग अपने परिवार में केवल नारी बनकर ही रहती हैं।'

मैंने बात को आगे बढ़ाते हुए पूछा, 'मानवता के अधिकारों से वंचित?'

उत्तर मिला, 'परिवार का आधार अधिकार नहीं, कर्तव्य और उत्तरदायित्व होता है।'

'तो स्त्रियाँ उस स्थिति में भी सुखी रहती हैं?' मैंने पूछा।

उसने अँग्रेजी का 'मे-बी' शब्द कहा, जिसका ठीक तरह हिंदी में अनुवाद सम्भव नहीं। शायद उसका मंतव्य था, 'हाँ भी और नहीं भी' उसने बात बदलते हुए कहा, 'आपके देश में तो एक महिला प्रधानमंत्री है।'

मैंने कहा, 'जी, किंतु हमारी प्रधानमंत्री अपने महिला विशेषण से चिढ़ती हैं। वह अपने को मानव-मात्र मानती हैं और लिंग-भेद के महत्व को स्वीकार नहीं करती।'

उसने कुछ सोचकर उत्तर दिया—'शायद यह ठीक है और जरूरी भी है।'

जब तक सैकी हम लोगों से थोड़ा आगे-आगे चलता, हम दोनों की बातचीत अबाधगति से चलती। किन्तु जब वह हम लोगों के समीप आ जाता तो मौके को हाथ से न जाने देने के लिये मैं सैकी की बहिन से इस तरह बात करता। 'आपका भाई बड़ा अच्छा है, उसके कारण मुझे बहुत सुविधा रही।' 'आपको भी तो बहुत प्यार करता होगा।' उस समझदार लड़की की आँखों में एक चमक सी दिखाई पड़ी, पर चेहरा भावहीन, शांत ज्यों का त्यों बना रहा। शायद वह अपने शब्दों को तौल रही थी।

उसने कहा, 'मेरा भाई बड़ा अच्छा है। मैं अपने को बड़ी भाग्यशाली समझती हूँ। मैं यह भी जानती हूँ कि उसकी कितनी मजबूरियाँ हैं। कभी-कभी सोचती हूँ कि कितना अच्छा होता अगर मैं उसके और नजदीक हो सकती।'

भाई और बहन के बीच की दूरी और बहन के दिल में भाई के और समीप जाने की इच्छा मेरे लिये नये अनुभव थे।

जापान जाने से पहले दिल्ली में मेरे एक परिचित जापानी ने अपने स्कूल के सहपाठी एवं मित्र को मेरे बारे में लिख दिया था और मुझसे कहा था कि ओसाका पहुँचने पर उनसे मिल लेना। उन सज्जन का नाम सिजुकी है। मेरे जापान पहुँचने के थोड़े दिन बाद ही मुझे सिजुकीसान का एक पत्र मिला जिसमें उसने मेरे ओसाका आने का कार्यक्रम पूछा था और लिखा था कि वह मुझे ओसाका और उसके आस-पास के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और मनोरंजक स्थानों को दिखाना चाहेगा। उसने यह भी लिखा था कि वह मेरा कार्यक्रम जानने पर मुझसे स्टेशन पर आकर मिलेगा। पहचानने की सुविधा के लिये उसने मुझसे तस्वीर भेजने का आग्रह भी किया था। पत्र के साथ उसने जापानी और अँग्रेजी में अपना पता लिखे हुए दो-तीन लिफाफे भी भेज दिये थे। जापानी भाषा में पता होने से पत्र आसानी से पहुँच जाता है। उल्लेखनीय है कि जापान में जहाँ सभी क्षेत्रों में काफी कुशलता से काम होता है, वहाँ विदेशियों के पास से आने वाली चिट्ठियों में देरी लगती है। शायद अँग्रेजी में लिखे पते को पढ़ने में वहाँ कठिनाई होती है। सबसे अधिक कठिनाई का कारण यह है कि जापान की सड़कों के नाम नहीं होते। उनकी एवेन्यू संख्या—एक-दो-तीन कह कर गिनी जाती है। इसके साथ-ही मकानों की संख्या भी बड़े अटपटे ढंग से दी जाती है। एक तो संख्या के फल के बारे में बहुत से अन्धविश्वास प्रचलित हैं। दूसरे, हर आदमी को अपने मकान के लिये शुभ-संख्या की इच्छा रहती है। मकानों की संख्या, उनके बनने की तिथि के अनुसार होती है। फल यह होता है कि पुराने मकान के पास बने नये मकान की अधिक अन्तर रहता है। मान लीजिये किसी मकान की संख्या 7। वाले की संख्या 720 या 321 भी हो सकती है। इससे डाकको कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

सिजुकी साहब के पत्र के एक अंश का रूपान्तर नीचे दे रहा हूं—

'मैं अपना साधारण परिचय दे रहा हूं। मेरी आयु 26 साल की है और अभी तक अकेला हूं। मैं एक बिजली की कम्पनी में इंजीनियर हूं और जिस फैक्ट्री में काम कर रहा हूं वहां पर सूर्य के प्रकाश से चलने वाली बहुत तरह की बैटरियां बनाई जा रही हैं। मैंने ओसाका विश्वविद्यालय से रसायन शास्त्र में शिक्षा पाई है। मुझे पहाड़ों पर चढ़ने और बेस-बॉल खेलने का शौक है। मैं पिछली मई से अंग्रेजी में बातचीत करना सीख रहा हूं। इसलिये आपसे बात करके और आपकी मातृभूमि के बारे में जान कर मुझे बहुत खुशी होगी।'

इस निश्छल परिचय का मेरे मन पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। मैंने अपनी-तस्वीर सिजुकी के पास भेज दी और उससे मिलने की प्रतीक्षा करने लगा।

ओसाका चलने के एक दिन पहले मुझे सिजुकी का दूसरा पत्र मिला कि कम्पनी के काम में व्यस्त होने के कारण वह मुझ से स्टेशन पर न मिल सकेगा। इसलिए मैं जिस होटल में ठहरूंगा वहां पर वह शाम के समय आकर मुझसे मुलाकात करेगा।

इंजीनियरिंग की डिग्री प्राप्त 25-26 साल के भारतीय युवकों का जो चित्र मेरे सामने था, वह एक अच्छी वेश-भूषा धारण किए, खाते-पीते, चतुर नौजवान का था। पर जब मैंने सिजुकीसान को देखा तो नक्शा बिल्कुल दूसरा था। एक दुबले-पतले अपनी उम्र से कम लगने वाले और जापानियों के साधारण कद से ऊंचे नौजवान को सामने पाया। आंखों पर मोटा चश्मा, दांत कुछ बाहर की तरफ निकले हुए, बाल बेतरतीब बिखरे हुए, एक शर्मीला और विनम्र नवयुवक। मैंने उसके सौजन्य के लिये आभार प्रकट किया और उसे साथ बाजार में चल कर खाने का निमन्त्रण दिया। सिजुकी ने ओसाका के बड़े-बड़े बाजारों में मुझे खूब चक्कर खिलाए। मुझे भूख लग रही थी। उसने कहा कि जमीन के नीचे बने बाजारों में जाना ठीक होगा। इसलिये वह ओसाका के तहखानों से मुझे बाजार में ले गया। वास्तव में वह अत्यन्त मोहक स्थान है। वहां बैठकर मैंने उसकी रुचि के अनुसार खाना मंगवाया और फिर हम लोग एक दूसरे के बारे में प्रश्न करने लगे।

सिजुकी ने बतलाया कि उसका घर ओसाका से करीब तीस मील दूर है। वहां से चलकर उसे आठ बजे सुबह आफिस में पहुंचना पड़ता है। उसका आफिस पांच बजे बन्द होता है। उसके बाद जब कुछ देर बाजारों का चक्कर लगाकर वह घर की ओर चलता है तो करीब डेढ़-घंटे में रेल और बस में बैठ कर घर पहुंचता है। सिजुकी के काम के बारे में उसकी कम्पनी के लोगों का मत बहुत अच्छा था। उसने एक नई तरह की सोलर-बैटरी बनाई थी जिसकी उन दिनों जांच हो रही थी।

इसमें उसे काफी व्यस्त रहना पड़ता था। इसी कारण वह स्टेशन पर मुझसे मिल न सका था। सिजुकी ने अपने परिवार के बारे में मुझे कुछ नहीं बताया। तोकीमान के अनुभव के बाद मैंने उससे उसके बारे में कुछ पूछा भी नहीं। उसने अपने और उस जापानी मित्र के बारे में जिससे मेरी भारत में भेंट हुई थी, बतलाया कि वह दोनों स्कूल में साथ-साथ पढ़ते रहे हैं। उनके घर भी एक जगह पर हैं। वे एक दूसरे के अभिन्न मित्र हैं। खाना खाने के बाद हम लोग काफ़ी देर तक ओसाका के बाजारों में घूमते रहे। वहाँ की चमकीली और अंधेरी दूकानों और उन में आने-जाने वाले लोगों की ओर मैं काफ़ी ध्यान से देख रहा था किन्तु सिजुकी का ध्यान किसी ओर नहीं था। वह कुछ शरमाता, सिमटा-सा मेरे साथ चल रहा था। सिजुकी के पत्र की बात को याद करके मैंने उससे पूछा, 'तो तुम अभी तक अकेले हो?'

उसने कहा, 'हाँ।' अभी तक किसी अनुरूप लड़की ने मुझसे प्यार नहीं किया।' मैं उसकी ईमानदारी से पहले ही प्रभावित था। इसलिये उसके अन्तर की परतों में दबी आत्महीनताजन्य व्यथा को मैं इस प्रसंग से और बढ़ाना नहीं चाहता था। अतः थोड़ी देर तक चुप रहा। किन्तु अपने कौतूहल को अधिक देर तक बाँध कर रखना मेरे लिए सम्भव न था अतः मैंने बात को घुमाव देते हुए कहा, 'मेरा अनुमान है कि तुम्हारे देश में मोहक लड़कियों की कमी नहीं है और वह अपने साथी को (ब्वाय-फ्रेंड) ढूंढने और उनके साथ समय काटने के लिये उत्सुक भी रहती हैं। इसलिये तुम्हें किसी 'गर्ल-फ्रेंड' की कमी नहीं होनी चाहिये, विशेषकर जब कि तुम इतने कुशल और सफल इंजीनियर हो। तुम्हारे विवाह के लिए तो बहुत-सी कुमारियों के पिता भी उत्सुक होंगे?'

सिजुकी ने बताया कि वह माता-पिता द्वारा तय की हुई शादी में विश्वास नहीं करता। पहले की पीढ़ी में लोग ऐसा करते थे। जापान के युवक अब ऐसा करना उचित नहीं मानते। इसलिये वह स्वयं ही अपने जीवन-साथी की खोज में हैं। पर न जाने क्यों उसने यह सब इतनी झिझक और उतरे मन से कहा कि उसके पीछे छिपी विफलता का आभास मुझे मिला। मैंने बात को आगे बढ़ाना अच्छा न समझा।

उसके बाद प्रायः रोज शाम को सिजुकी मेरे होटल में आ जाया करता था और कोई प्रोग्राम बनाकर मेरे साथ घूमने जाया करता था। सप्ताह के अन्त में अधिकतर जापानी पिकनिक का प्रोग्राम बनाते हैं। उस सप्ताह इतवार की छुट्टी के साथ ही सोमवार की राष्ट्रीय छुट्टी थी–अर्थात् दो दिन की छुट्टियाँ। सिजुकी ने बताया कि उसने अगले सोमवार को किसी निकटवर्ती पहाड़ पर हाईकिंग का प्रोग्राम बनाया है, इसलिये वह उस दिन मेरे साथ न हो सकेगा जिस दिन शाम को मुझे तोक्यो वापस जाना है। उसने प्रस्ताव रखा कि हम लोग इतवार के दिन

'नारा' जाएँगे। उसने पूछा क्या वह अपने साथ कुछ मित्रों को ला सकता है। मैंने कहा, 'ज़रूर' और यह तय हुआ कि पहले वह अपने मित्रों के साथ ही होटल पर आयेगा और फिर हम लोग साथ-साथ 'नारा' जायेंगे।

इतवार को प्रातःकाल समय से पहले ही तैयार होकर मैं सिजुकी की प्रतीक्षा करने लगा। सोचता रहा कि उसके साथ काम करने वाले कुछ जापानी युवक आने होंगे जो अंग्रेज़ी वार्तालाप की नोक को तेज़ करने के लिये मुझे पेंसिल-कटर समझ कर मेरे साथ समय बितायेंगे। पर थोड़ी देर बाद मैंने देखा कि सिजुकी दो लड़कियों के साथ मेरे होटल के द्वार से प्रवेश कर रहा है। उसके मुख पर वही लजीली मुसकान थी। उसने स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा, 'ये लड़कियाँ मेरी फैक्ट्री में काम करती हैं। मैंने जब आपकी अंग्रेज़ी बोलने की दक्षता के बारे में चर्चा की और अपना नारा जाने का प्रोग्राम बताया तो इन्होंने मेरे साथ आने को कहा। शायद आपको इसमें कोई आपत्ति न हो, ये भी आपके साथ चलना चाहेंगी।'

मेरा कहना गलत होगा कि मुझे इन लोगों के आने से और उनके साथ चलने के प्रस्ताव से बुरा लगा परन्तु इस बात से झुँझलाहट अवश्य ही हुई कि इन लोगों की दृष्टि में मेरा मूल्य केवल अंग्रेज़ी का अभ्यास बढ़ाने वाली मशीन से अधिक नहीं है।

सिजुकी के साथ की दो महिलाओं में से एक जापानी यंग वुमैन क्रिश्चियन एसोसियेशन में शाम को लगने वाली अंग्रेज़ी की कक्षाओं में शिक्षण ले रही थी। दिन में दफ़्तर का काम और शाम को अंग्रेज़ी की पढ़ाई। दूसरी लड़की अंग्रेज़ी का शिक्षण पूरा कर चुकी थी। इसलिये शिक्षण पाने वाली लड़की के लिये मेरे साथ रहना अधिक उपयोगी था। अतः वह मेरे साथ और दूसरी सिजुकी के साथ होकर नारा के लिये चल दिये।

मेरे साथ चलने वाली लड़की का नाम यामुको था। यामुको के पिता एक इंजीनियर हैं। उसकी छोटी बहन भी एक फ़ैक्ट्री में काम करती है और एक भाई अमरीका में शिक्षा प्राप्त करने गया हुआ है। वह स्वयं अंग्रेज़ी बोलने का अभ्यास करने के बाद जापान के बाहर अमरीका या भारत आने की इच्छुक थी। शायद इसीलिये वह सिजुकी के साथ उस दिन के प्रोग्राम में शामिल हुई थी। यामुको अंग्रेज़ी वेश-भूषा में थी—ऊँची एड़ी का नुकीला काला जूता, जाँघों तक मोज़े जिनका रंग उसकी त्वचा के रंग से मिलता-जुलता था, स्कर्ट और ब्लाउज़, छोटे-छोटे बाल कानों के ऊपर फैले थे। उसकी नाक बहुत छोटी, आँखें पतली, स्वर हल्का और गति मन्थर। यामुको ने अंग्रेज़ी भाषा का अभ्यास शुरू किया। पर उसकी सादगी और भोलेपन से प्रभावित मैं उसकी कितनी सहायता कर पाया, यह कहना कठिन है।

हम लोगों ने साथ-साथ नारा का मृग-वन, मिन्तो का पूजाघर और दायबत्सू

की विशाल मूर्ति वाला तोदाएजी का मंदिर देखा। इन ऐतिहासिक स्थानों के बारे में उसका ज्ञान सीमित था। यदि उनके ऐतिहासिक महत्त्व के बारे में कुछ ज्ञान था तो उसे अँग्रेजी में व्यक्त करने की उसकी क्षमता सीमित थी। इसलिये बातचीत करते रहने का भार मुझ पर ही रहा। मैं उसे अपने देश के बारे में बतलाने लगा। उसने जो प्रश्न किये उनसे हमारे देश के बारे में साधारण जापानियों का अज्ञान और अनभिज्ञता ही स्पष्ट हुई। उसका एक प्रश्न था, 'क्या आप लोग शाम को घर जाने पर पगडी बाँधकर बैठते हैं?' मैंने कहा 'नहीं'। फिर मुझे खयाल आया कि अँग्रेजी की पुस्तक-पुस्तिकाओं में अक्सर भारतीयों को पगड़ी पहने दिखाया जाता है। चूँकि जापानी लोग स्वयं घर जाने पर अपनी घरेलू वेशभूषा पहन लेते हैं इसलिए उनके खयाल में भारतीयों को घर पर भारतीय वेश धारण करना चाहिये। उसका प्रश्न शायद इसी धारणा पर आधारित था।

उसका दूसरा प्रश्न भारत की गायों के बारे में था। उसने भारत के बारे में जापान में टेलीविज़न पर होने वाले कुछ कार्य-क्रम देखे थे। ये कार्यक्रम अत्यंत मनोरंजक और शिक्षाप्रद होते हैं। इनमें देश-विदेशों की झाँकियाँ और वहाँ की संस्कृति, इतिहास, और इमारतों के बारे में जानकारी दी जाती है। किसी टेलीविज़न कार्य-क्रम में उसने सुना था कि भारत में कई करोड़ गायें हैं। ये गायें दिल्ली की बड़ी-बड़ी सड़कों पर घूमती-फिरती हैं पर उन्हें वहाँ से कोई नहीं हटाता। उसे यह भी ज्ञात था कि भारत में भयंकर अकाल पड़ रहा है। उसने कुछ दिन पहले स्कूल के बच्चों को बुद्ध के जन्म-स्थान के निवासियों के लिये धन इकट्ठा करते देखा था। उसने टेलीविज़न पर कही जाने वाली बात को दोहराते हुए कहा कि आपके यहाँ अन्न की कमी है, पर आपके यहाँ गायों की इतनी बड़ी संख्या है। मांस-भक्षण के संबंध में मैंने उसे अपने देशवासियों का दृष्टिकोण बताया। उसने 'हाई-हाई' कह कर अपनी सहमति प्रगट की। जब हम लोग दायबुत्सु में भगवान बुद्ध की विशाल मूर्ति के सामने खड़े थे तब योशुको ने कहा था कि इस मूर्ति की खुली हथेली पर 10 आदमी एक साथ खड़े हो सकते हैं। उसकी इस बात से मुझे एक क्षण में यह आभास हो गया था कि जापान की नई पीढ़ी के लोगों में बौद्ध-धर्म के प्रति कितनी आस्था है। बुद्ध मूर्तियाँ अब उनके ऐतिहासिक अभिमान की पूर्ति का साधन मात्र हैं। उनके मन में दायबुत्सु का केवल यही महत्त्व है कि वह संसार भर में सबसे बड़ी मूर्ति है। सीढ़ियाँ लगाकर आसानी दर्शक उनके सिर पर खड़े हो जाते हैं। हाँ, इसके लिये टिकट खरीदनी पड़ती है। धर्म, व्यवसाय बन गया है। मुझे अक्सर उस सरल हृदया नारी की बात याद आती है कि दायबुत्सु की एक हथेली पर दस आदमी एक साथ खड़े हो सकते हैं।

दूसरे दिन मुझे ओसाका छोड़कर जाना था। किमुरी पहाड़ी पर वहाँ के कार्यक्रम में व्यस्त था इसलिये मुझे छोड़ने न आ सका। मैं अवकिन-ओसाका

स्टेशन पर पहुँचा, जो ओसाका से करीब दस मील बाहर है, तो मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उस समय, रात के करीब आठ बजे, यासुको अकेली खड़ी मेरा इन्तज़ार कर रही है। मेरे हाथों में दो बड़ी-बड़ी पेटियाँ थीं। उनका बोझ उठाना मेरे लिये कठिन था। मेरे हाथ से एक पेटी लेने के लिए वह आगे बढ़ी। मैंने कहा, 'कोई कुली मिल सके तो अच्छा होगा।' उसने चारों तरफ दृष्टि डाली। वहाँ कोई लाल वर्दी वाला कुली दिखाई न पड़ा। उसने कहा 'मैं ही उठा लूंगी।'

'मैंने कहा, 'स्त्रियों से हम बोझा नहीं उठवाया करते।'

वह मुस्कराई और बोली, 'इसमें क्या बुरी बात है, हम तो हमेशा ही अपने भाइयों, पतियों और पिताओं का सामान लेकर चलती हैं।'

मैंने कोई जवाब नहीं दिया। अपने बोझ से दबा ऊपर के प्लेटफार्म पर जाने के लिये सिढ़ियाँ चढ़ने लगा। उसने मेरे बायें हाथ वाले सूटकेस में अपना हाथ डाल ही दिया। इससे मुझपर भार कुछ हल्का हो गया। मुझे उसकी यह अनुकम्पा अच्छी लगी। बिना कुछ कहे-सुने हम आगे बढ़ने लगे और ऊपर के प्लेटफार्म पर जाकर गाड़ी की प्रतीक्षा करने लगे। गाड़ी खचाखच भरी हुई थी। इसलिये सिर्फ खड़े होने की तिल भर जगह मिली। एक सूटकेस मैंने किसी तरह ऊपर रख दिया। दूसरा सीटों के बीच रास्ते में। यासुको ने वहाँ खड़े एक जापानी से कुछ कहा। बाद में मुझे बताया कि तोक्यो में भार उठाने में वह मेरी मदद कर देगा। शायद यासुको ने उससे मेरी मदद करने की प्रार्थना की थी।

गाड़ी चलने लगी तो मैंने यासुको को प्लेटफार्म पर खड़े देखा। उसकी आँखों में मुझे चमकते मोतियों का आभास हुआ। उसकी भावुकता को देखकर मैं अपने को न सँभाल सका। मेरे मन में कृतज्ञता के भाव उमड़ने लगे। आखिर मैंने अपनी चंद घंटों की मुलाकात में उस सरल हृदया लड़की को क्या दिया जिसके बदले उसने मेरे लिये सरल सहृदयता के द्वार खोल दिये। मानव-हृदय की भावनाएँ जाति, राष्ट्र और रंग की चारदीवारी में बंद नहीं की जा सकतीं। मानव होने के नाते हम एक दूसरे के कितने निकट हैं। शिष्टता किसी एक राष्ट्र का एकाधिकार नहीं है। वह सभी जगह के लोगों और सभी वर्गों में पाई जा सकती है। मैं उसकी हार्दिकता को सराहता हुआ, तेज़ी से भागती रेलगाड़ी में बैठा, घन्टों तक न जाने क्या-क्या सोचता रहा ?

× × ×

मेरे जापान प्रवास के दिनों में 17 नवम्बर को भीषण तूफ़ान आया। शाम से ही मूसलाधार पानी बरसने लगा था। ठंडी तेज़ हवा की मौज-मौज में बौछारों का रूप बदलना जा रहा था। रात में जब मैं अपने वातानुकूलित कमरे में सो रहा था तो एकाएक शीशे के दरवाज़े हिलने लगे और भयंकर आवाज़ें आने

लगीं। भारी चीज़ों के गिरने के धमाके सुनाई पड़ने लगे। उसी-सी दशा में जब मैंने खिड़की के परदों को एक तरफ़ खींचा तो बिजली की चमक कमरे की अँधियारी को इसनी सी लगी। एक बार तो लगा मानो प्रलय का प्रकोप है। बाहर लोगों के चलने और उनकी बातों से इस भयावह वातावरण में कुछ धैर्य सा बँधा। मैं कमरे के बाहर निकल आया। देखा कि मेरे बहुत से विदेशी साथी रेडियो सुन रहे हैं। उन्हें थोड़ी-थोड़ी देर में तूफ़ान के बढ़ने की दिशा, उसकी गति और वेग के बारे में बताया जा रहा था। एक भयानक दुःस्वप्न चल रहा था। रात के अंतिम पहर में झपकी लेने के बाद अगले दिन सवेरे उद्विग्न मन से उठा तो तोक्यो के बाहर जाने का प्रोग्राम बनाने लगा। उस दिन छुट्टी थी। सोचा उत्तर-पूर्व की ओर जापान के अन्य प्रदेश में चला जाए। तोक्यो सेन्ट्रल स्टेशन पहुँचा। वहाँ ज्ञात हुआ कि उस ओर जाने वाली सभी रेल-गाड़ियाँ रद्द कर दी गयी हैं क्योंकि पिछली रात के तूफ़ान के कारण कहीं रेल की पटरियाँ उखड़ गई हैं या पेड़ों के गिरने से रास्ता बन्द हो गया है। थोड़ी देर इधर-उधर अनिश्चित घूमने के बाद मैंने सोचा कि कामाकूरा ही चला जाए क्योंकि वह तोक्यो से पश्चिम की ओर था और उस ओर जाने वाली रेल-गाड़ियाँ ठीक चल रही थीं।

कामाकूरा स्टेशन के बाहर आने पर मैंने वहाँ के दर्शनीय स्थानों के बारे में कुछ लोगों से पूछताछ करनी शुरू की लेकिन वहाँ ऐसा कोई भी व्यक्ति उस समय न मिल सका जो मेरी बात को समझ कर मुझे अँग्रेज़ी में उसका ठीक जवाब दे पाता। स्टेशन के एक ओर नगर की एक बस-कम्पनी का छोटा-सा दफ़्तर था। कामाकूरा घूमने के लिये वहाँ विशेष बसों का प्रबन्ध था। लेकिन बस पर बैठ कर जाना मैंने ठीक न समझा। क्योंकि भाषा की कठिनाई के कारण मुझे विभिन्न स्थानों के बारे में कोई ठीक से न समझा पाता। प्रयत्न करने पर तोक्यो में थोड़ी-बहुत अँग्रेज़ी बोलने और समझने वाले मिल जाते हैं, परन्तु जापान के अन्तर में स्थित कामाकूरा में अँग्रेज़ी समझने और बोलने वालों की कमी है। मैं हतबुद्धि सा स्टेशन के आस-पास की दूकानों का चक्कर काटने लगा। सड़क के दोनों ओर रेस्तराँ थे। उनमें से एक बड़ा आकर्षक लग रहा था। मैं उसके अन्दर चला गया। सोचा खा-पिया जाए। उतने समय में शायद कामाकूरा में घूमने का कोई सुलभ तरीका निकल आये।

रेस्तराँ में भाषा की कठिनाई का सामना फिर करना पड़ा। वहाँ खड़ी 'सेल्स-गर्ल' से मैं कह रहा था कि मुझे ऐसा भोजन चाहिये जिसमें गोमांस न हो। जापान के करीब-करीब सभी पकवानों में गोमांस या दूसरे मांस की बारीक बोटियों का किसी न किसी रूप में प्रयोग किया जाता है। एक-आध बार अन-जाने में मैंने उसे अपनी प्लेटों में पाया था। इस कारण पूरी जानकारी के बिना

भोजन चुनने में मुझे हिचकिचाहट होती थी। कभी-कभी दुविधा से बचने के लिये टोस्ट और मक्खन पर ही गुजारा करना पड़ा था। मैं उस नासमझ लड़की को समझा रहा था कि मुझे कोई ऐसी प्लेट चाहिये, जिसमें मांस न हो। पर उसकी 'हाई-हाई' और 'ने-ने' से स्पष्ट था कि वह मेरी बात नहीं समझ रही थी। झुँझलाहट हो रही थी, किन्तु शांति का आडम्बर बनाकर मैं उसे बार-बार एक ही बात समझाने की कोशिश कर रहा था। सहसा मेरे पीछे किसी ने पूछा, 'मे आइ हेल्प यू ?' मैंने मुड़कर देखा एक जापानी लड़की थी, आँखों पर धूप का बहुत बड़ा चश्मा लगाये, कसी और तंग पतलून पर छोटी आधी बाँहों की कमीज पहने हुए। इस पोशाक में उसका शरीर बहुत छोटा लग रहा था, लेकिन था हृष्ट-पुष्ट। सिर पर वह सिल्क का स्कार्फ बाँधे हुए थी। उसकी वेष-भूषा को देखकर मुझ पर उसका पहला प्रभाव बहुत अच्छा न था। अपने देश में इस तरह की पोशाक पहनने वाली लड़कियों के प्रति मेरे मन में विरक्ति का भाव उठता है। फिर भी मुझे उसकी मदद की अपेक्षा थी। मैंने उसे झुककर अभिवादन करते हुए कहा, 'धन्यवाद, मैं कोई ऐसी चीज चाहता हूँ जिसमें गोमांस न हो।'

कुछ आगे की ओर बढ़ कर उसने 'सेल्सगर्ल' से जापानी भाषा में कोई बात दो-तीन बार कही। फिर मुझे शो-केस की तरफ चलने का इशारा किया जहाँ पर रैस्तराँ में बनी हुई चीजों के नमूने सुन्दर प्लेटों में सजे रखे थे। मैं हर एक चीज़ के बारे में पूछता था कि यह किन चीज़ों से बनती है ? उसमें मांस मिला है या नहीं ? यह मीठी है या नमकीन ? इसका स्वाद कैसा है ? इत्यादि। वह बड़े धीमे और मीठे स्वर में उनके बारे में बताती जाती थी। अँग्रेजी बोलने का उसका बहुत कुछ अमरीकी ढंग था और अभी तक सुने जापानियों के उच्चारण से सर्वथा भिन्न। वह 'राइस' को 'लाइस' कहती थी और 'टोस्ट' को 'तोस्त'।

बहुत पूछताछ के बाद मैंने दो-तीन प्लेटें लाने का आर्डर दिया और उसे झुक कर धन्यवाद देने के बाद एक ओर पड़ी खाली मेज पर बैठ गया। इस आकस्मिक और अकारण सहायता के लिये मैं उस चमकीले दाँत वाली गुड़िया-सी लड़की की मन-ही-मन सराहना करने लगा।

विचारों के बीच उलझा मैं उस मेज पर काफी देर तक बैठा रहा। मुझ से दो-तीन मेज़ आगे की ओर वह किसी दुबले-पतले लम्बे लड़के से बात करती हुई मेरे सामने मुँह किये बैठी थी। वे दोनों घुल-मिलकर आपस में बातें कर रहे थे। कभी-कभी वह सिर उठाकर मेरी ओर देख लेती थी लेकिन उसके चेहरे पर किसी तरह की भाव-भंगिमा दिखाई नहीं पड़ती थी। वैसे भी जापानियों की आँखें बड़ी शांत रहती हैं। उनमें भारतवासियों की आँखों की तरह भावनाओं का प्रतिबिम्ब नहीं मिलता। फिर वह लड़की धूप का चश्मा लगाये थी। थोड़ी देर बाद दाम चुका कर वह और उसके साथ का लड़का बाहर जाने

लगे। रास्ते में मेरी मेज़ थी। वहाँ पर वे दोनों ठिठक गये। उस लड़की ने मुझे सम्बोधित करते हुए पूछा, 'आप शायद कामाकूरा घूमना चाहते हैं।' मेरे 'हाँ' कहने पर साथ के लड़के की ओर इशारा करते हुए उसने कहा, 'यह मेरा दोस्त है। इसके पास समय है, यदि आप चाहें, तो यह आपको कामाकूरा घुमा सकता है।' इस अप्रत्याशित प्रस्ताव को समझने में मुझे कुछ समय लगा। मुझे ऐसे अनुभव हो चुके थे कि अपना अँग्रेज़ी बोलने का अभ्यास बढ़ाने के लिये कुछ जापानी विद्यार्थियों ने मेरा साथ किया था। पर न तो वे मुझे अपनी बात समझा पाते थे और न मेरी समझते थे। इसमें समय नष्ट होता था और मेरी जानकारी भी न बढ़ पाती थी। मुझे संशय हुआ कि अँग्रेज़ी बोलने और जानने वाले विदेशी को जापान में जो शिष्ट यातना भुगतनी पड़ती है कहीं उसी की एक क़िस्त और चुकाने का यह निमंत्रण न हो। किन्तु जिस सौजन्य के साथ बात कही गई थी उसके उत्तर में इकार करना कठिन था। अतः धन्यवाद देते हुए मैंने कहा, 'आपकी इस कृपा के लिये मैं अनुगृहीत हूँ। मैं इनके साथ चलूँगा।' दाम चुका कर मैं उन लोगों के साथ चल दिया। रेस्तराँ के बाहर निकल कर वे दोनों आगे और मैं उनके पीछे चलने लगा। मैंने पूछा—'टैक्सी करनी है या बस में चलना है।' लड़की ने कहा, 'नहीं, इनके पास अपनी कार है, आप उसमें बैठ कर जाइये।' छोटी-सी कार थी। उसमें आगे की दो सीटों पर गाड़ी चलाने वाला और एक साथी आराम से बैठ सकते थे। पर आगे की कुर्सी झुका कर पड़ने से पीछे वाले को तकलीफ़ होती थी। मैंने उस लड़की से औपचारिक रूप से कहा, 'आप भी क्यों नहीं चलती?' अपने साथी की ओर देखकर उसने कहा, 'अच्छा, मैं भी चलती हूँ' और मेरे आग्रह करने पर भी वह लाँघ कर पीछे बैठ गई। मैं ड्राइवर की बग़ल वाली सीट पर आगे बैठ गया। कार चलने के थोड़ी देर बाद मैंने मुड़ कर कृतज्ञता जताते हुए उस लड़की से कहा, 'वास्तव में मैं आप दोनों का बड़ा आभारी हूँ। आपने मुझे अपने इस ऐतिहासिक नगर को दिखाने का कष्ट उठाया'। उसने केवल 'ओ० के०' कह दिया। फिर बोली, 'यह मेरे साथी मिस्टर ईमूरा हैं। मेरी इनसे मँगनी हो गई है। अगली 30 अक्टूबर को शादी होगी।' मेरा कुतूहल जागा। मैंने इमूरासान को सम्बोधित करते हुए पूछा, 'आप यूनीवर्सिटी में पढ़ते हैं?' उसने जापानी में 'ये' कहा, अर्थात् 'नहीं'। उसके वक्तव्य को पूरा करते हुए, उसकी मंगेतर ने कहा, 'ये चावल का व्यापार करते हैं। यहाँ के बड़े व्यापारी हैं। मैं होनोलूलू से थोड़े दिन पहले ही जापान आई हूँ।'

'आप होनोलूलू में क्या करती थीं?' मैंने पूछा।

उसने कहा, 'मेरे पिता वहाँ के बड़े व्यापारी हैं। मैंने वहाँ की एक अमरीकी मिशनरी संस्था में शिक्षा पाई है। यहाँ मेरी इन महाशय से शादी तय हुई है। इसीलिए मैं यहाँ चली आई हूँ।'

मुझे उसकी भाषा और उसके शुद्ध उच्चारण का कारण अब समझ मे आया।

इमूरासान और उसकी मंगेतर ने बड़े उत्साह और स्नेह से मुझे कामाकूरा के विभिन्न शिन्तो, उपासनागृहो, बागों और मन्दिरो की सैर कराई। बुद्ध की विशालकाय मूर्ति के दर्शन कराये। फिर वे मुझे नगर से कई मील बाहर एनशीमा द्वीप पर ले गये। वहाँ समुद्र की खारी बूँदें किनारे से टकराकर हम लोगों पर उछल रही थीं। कई अच्छी जगहों पर उन्होंने मेरी तस्वीरें लीं। बदले मे मैंने भी उनकी कई तस्वीरें खींची। वह लड़की सभी जगहो पर मुझ से बातचीत करती रही। इमूरासान शांत तथा निर्लिप्त भाव से मुझे जगह-जगह ले जाकर घुमाता रहा। उसके रंग-ढंग मे एक अजीब विराग और उदासीनता का भाव था। जैसे कोई कर्तव्य समझकर कुछ काम कर रहा हो, पर उसमे उसे आनन्द का अनुभव न हो रहा हो। सम्भव है, उसकी मंगेतर ने ही उसे ऐसा करने को कहा हो और अनिच्छा होने पर भी वह उसकी बात को न टाल सका हो। हो सकता है कि यह मेरा भ्रम हो क्योंकि कभी-कभी वह अपनी टूटी-फूटी अँग्रेजी में वहाँ के मन्दिरों के बारे मे बताता था। इससे उसकी सहृदयता झलकने लगती थी।

वे लोग बाद में मुझे कामाकूरा के बाजारों मे ले गये। वहाँ टैक्सियाँ तेज चलती हैं, यद्यपि तोक्यो जैसी भीड़-भाड़ नही है। एक स्टोर मे जाकर उन्होंने खाने-पीने की बहुत-सी चीजें खरीदी। वहाँ से निकलकर उन्होने मुझ से मेरा प्रोग्राम पूछा। मैंने कहा, 'मैं गाड़ी से वापस जाना चाहता हूँ।'

उस लड़की ने पूछा, 'क्या आपने कभी कोई जापानी घर देखा है ?'

मेरे 'नहीं' कहने पर उसने अपने साथी से बात करने के बाद कहा, 'यह आपको मेरे घर आने के लिये कह रहे हैं।' फिर रुककर बोली—'मेरा घर यों ही अस्त-व्यस्त पड़ा हुआ है। वहाँ पहुँचकर आपको असुविधा हो तो उसके लिये क्षमा कीजियेगा।'

मैंने सोचा शायद यह लड़की किसी जगह काम करती होगी। पाँचवें-छठे मंजिल के कोने में छोटा-सा कमरा होगा। जहाँ पर तातामी बिछाकर उसने अपने रहने की व्यवस्था की होगी। यह धनी जापानी छुट्टी के दिन वहाँ जाकर इससे गपशप करता होगा। लगभग आधे-घण्टे की तेज रफ्तार के बाद जब हम उसके घर पहुँचे तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। एक ओर छोटी-सी पहाड़ी। उसके नीचे धान के खेतो की क्यारियाँ। उसके बाद सड़क और सड़क के किनारे से कुछ हट कर छोटे-छोटे बड़े सुन्दर मकान। उनके बीच होकर मैं उन दोनों के साथ मकान मे गया। देहरी के पास जूते उतारे और बैठने के कमरे मे गया। वहाँ भूमि पर तातामी बिछी थी। उस पर आधुनिक ढंग का लकड़ी का बड़ा सुन्दर सोफा था। एक ओर बहुत बड़ा रेडियो और रिकार्ड-प्लेयर रखा था। दूसरी ओर

प्यानों। उससे लगा हुआ खाने का कमरा था। उस मकान का सब सामान आधुनिक, नया और कलापूर्ण था। हाँ, चारों ओर कपड़े और सामान बेतरतीब पड़ा था। इमूरासान ने एक गाउन और कमीज़ उठा कर अलमारी में रखते हुए कहा—'आज छुट्टी थी, इसलिये कल रात हम बहुत देर तक बातें करते रहे।'

वहाँ एक ऐश-ट्रे रखा था। उसमें दस-बारह सिगरेटों के टुकड़े पड़े थे। जब मेरी दृष्टि उन पर गई तो कहने लगा, 'हम लोग काफ़ी रात तक बातें करते रहे, इसलिये इतने टुकड़े जमा हो गये।' वह ऐश-ट्रे उठाकर चला गया। थोड़ी देर में उसे साफ कर वापस रख गया।

जापान में विवाह से पहले भावी पति-पत्नी जीवन के अधिक-से-अधिक क्षण एक दूसरे के साथ बिताते होंगे, मुझे ऐसा आभास हुआ।

थोड़ी देर बाद एक प्रौढ़ महिला और एक पुरुष वहाँ आए। उस लड़की ने बताया कि वह महिला इमूरासान की माता थी और वह पुरुष लड़की के पिता के दोस्त। यह महाशय जापान की कोकाकोला कम्पनी के सेल्स मैनेजर थे। उनका आफिस तोक्यो में था। वे इन दोनों के विवाह के संबंध में इमूरा की माता से बातें करने तोक्यो से कामाकूरा आए थे। थोड़ी देर बाद चाय आ गई। फल काट कर रख दिये गये। फिर उन चारों में बड़ी लम्बी बातें शुरु हो गईं। मैं उनका अर्थ नहीं समझ सकता था लेकिन यह जरूर समझ गया कि कोई ऐसी उलझन की बात जरूर है। नयी और पुरानी पीढ़ी के विचार नहीं मिल रहे थे। मैं काफ़ी देर तक उनकी बातचीत सुनता रहा। इस सारी बातचीत में कभी किसी की आवाज़ तेज नहीं हुई। हल्के, मृदुल और निर्लेप भाव से सब लोग आपस में बातें कर रहे थे। मैंने अपनी ओर से कोई जिज्ञासा व्यक्त नहीं की। किन्तु थोड़ी देर बाद कोका-कोला वाले महाशय ने मुझे इस बातचीत के सार से वंचित रखना ठीक न समझा। उन्होंने बतलाया कि बातचीत का विषय उन दोनों के विवाह संस्कार के ढंग पर है। लड़के की माँ चाहती थी कि विवाह शितो उपासना-गृह में संपन्न हो और उसके बाद नव-दम्पती परंपरागत जापानी वेशभूषा पहनकर किसी रेस्तराँ में जाएँ जहाँ दोनों पक्षों के मेहमानों को पार्टी दी जाए। इसके विपरीत इमूरासान और उसकी मंगेतर का यह हठ था कि वे किसी उपासनागृह में न जाना चाहेंगे। वे जापानी वेशभूषा पहनने के भी विरुद्ध थे। वे आधुनिक पोशाक पहन कर रेस्तराँ में ही विवाह करने के पक्ष में थे। चमकीले-भड़कीले किमोनो पहन कर शहर की सड़कों पर जाने में उन्हें झिझक लगेगी। उस लड़की को कुरेदते हुए मैंने पूछा, 'आप इन लोगों की इच्छा के अनुसार ही विवाह करें तो क्या बुराई है' उसने बड़े ही सहज ढंग से लड़के की ओर मुंह घुमा कर उत्तर दिया, 'ये मान लें तो ठीक है।' पर आखिर विवाह का उपासना से क्या संबंध है ?

मैंने पूछा, 'क्या विवाह संस्कार नहीं ?'

तब उसने 'मे बी' कह दिया अर्थात् हो सकता है या नहीं भी। फिर वहाँ से उठकर रसोई में चली गई। उसने और इमूरा ने मिलकर बिजली के चूल्हे पर जो पकवान बनाये थे, थोड़ी देर बाद ला कर रख दिये।

बातचीत के बाद इमूरा की माँ और वह सज्जन वहाँ से चले गये। उसके बाद उन लोगो ने जापानी गाने और विशेषकर पश्चिमी संगीत और ऑरकेस्ट्रा के रिकार्ड देर तक मुझे सुनाये। बीच-बीच में वे भारत के बारे में कोई प्रश्न पूछ लेते थे और मैं उनका समाधान कर देता था। लेकिन जब मैंने जापान के बारे में पूछा तो उस लड़की ने कहा कि वह जापान के बारे में स्वयं बहुत कम जानती है, क्योंकि वह अधिकतर कैरीबियन द्वीपों में रही है। इमूरासान व्यापारी का लड़का था। उसकी जानकारी और जिज्ञासा सीमित थी और उस पर भाषा की सॉकल लगी थी। पर उसने अपनी मँगेतर के सामने एक विचित्र बात कही कि भारत की लड़कियाँ संसार भर में सबसे सुन्दर होती हैं। मेरे पूछने पर उसने बतलाया कि उनका लम्बा और भरा शरीर, सुनहरी त्वचा और बड़ी-बड़ी आँखें उन्हें इस गौरवमय पद के भागी बनाते हैं। मुझे नहीं मालूम कि इमूरासान ने कितनी भारतीय स्त्रियों को देखा है। शायद टेलीविजन या मूवी में देखा हो। पर अपनी मँगेतर के सामने उसकी आकृति और रूप से सर्वथा भिन्न भारतीय नारियों की इस प्रशंसा से मुझे आश्चर्य और गर्व का अनुभव हुआ।

मेरी गाड़ी के आने का समय हो रहा था। मैंने उनसे स्टेशन जाने की आज्ञा माँगी। उन्होंने कहा कि वे मेरे साथ स्टेशन चलेंगे और मुझे गाड़ी पर बिठाने के बाद वापिस आयेंगे।

स्टेशन पर मैंने उनसे आग्रह किया कि वे दोनों तोक्यो आयें। वहाँ एक भारतीय रेस्तराँ में मैं उन्हें भारतीय भोजन कराना चाहता हूँ। उन्होंने मेरा निमंत्रण सहर्ष स्वीकार कर किया। बाद में इमूरासान और उसकी मँगेतर ने जापान के गाने और धुनों का एक टेप मुझे भेजा था। उसमें लिखा था, 'अपनी जापान-यात्रा की यादगार के रूप में यह छोटा-सा उपहार कृपया स्वीकार करें।' बदले में मैंने उनको भारत में बने हाथी के दाँत की एक छोटी-सी डिबिया भेजी, जिसे उन्होंने बहुत पसन्द किया।

मैं अक्सर कामाकुरा की मुलाक़ात के बारे में सोचता हूँ। वहाँ उन जापानी युगल-प्रेमियों ने मेरी जो सहज, अकारण और हार्दिक आवभगत की उसकी छाप मेरे मन पर अमिट रहेगी।

× × ×

इतवार का दिन था। तोक्यो के सबसे बड़े और सुंदर बाज़ार गिनज़ा में स्थित भारतीय रेस्तराँ में दोपहर का खाना खा कर, दुकानों के बाहर सामान से भरे शो-केसों को देखता हुआ, इधर-उधर निरुद्देश्य घूम रहा था। सामने मित्सू-

कोशी का विख्यात दिपातो दिखाई पड़ा। उसमें जाकर आठ-मंज़िलों में फैले उसके विशाल हालों में सजे तरह-तरह के सामानों पर नज़र डालने लगा। अनन्त सामान के ढेरों से भरी मेज़ों का चक्कर काटते हुये जब थक गया तो आख़िरी मंज़िल की छत पर एक किनारे पड़ी बेंच पर जाकर बैठ गया। इस छत को बाग़ कहते हैं। यहाँ एक स्टाल है, जिस पर दूध, कोकाकोला, छिली हुई बर्फ़, और चाकलेट आदि मिलते थे। दूसरी ओर बच्चों के खेलने के सामान थे, वहाँ बैठ कर बहुत से बच्चे किलकिला रहे थे। बारजे के किनारे पर और भी बेंचें पड़ी थीं, जिन पर लोग बैठे थे। मेरे पास वाली बेंच पर साफ़-सुथरी दो लड़कियाँ बैठी हुई बड़े धीमे स्वर में बात कर रही थीं। उनसे बात करने की मेरी इच्छा हुई पर भाषा की खाई के कारण वार्तालाप सम्भव न हुआ। उस समय शाम के साढ़े-तीन बजे होंगे। सामने गिनज़ा की बहुमंज़िली, आधुनिक भवन कला की अद्भुत और अभूतपूर्व उपलब्धियों के रूप में इमारतें खड़ी थीं। दिन होते हुए भी उनके अन्दर बिजली की बत्तियाँ जल रही थीं। ठीक सामने जापान की बहुत बड़ी व्यापारिक संस्था मित्सूबीशी की आठ मंज़िल ऊँची शीशे की मीनार थी। उसके अन्दर मेज़ें और कुर्सियाँ लगी थीं। उन पर बैठे बहुत से विदेशी बाहर झाँक रहे थे। नीचे गिनज़ा की चौड़ी सड़कों पर रंग-बिरंगी चमकीली कारों का अटूट तारतम्य था। कुछ मिनटों के लिये जब एक ओर की बत्तियाँ लाल हो जाती थीं, तो कारों की लकीर खिंचती चली जाती थी। हरी बत्ती जलने पर अवरुद्ध प्रवाह का बाँध खुल जाता और बहुत-सी क़तारों में फैल कर बहने लगता। पास में खेलते बच्चों का कोलाहल, दूर क्षितिज पर अत्यन्त विशाल रंगीन गोले, पास में बैठी हुई लड़कियों की चहचहाट-सी बातचीत। इन सबका रस लेते हुए न जाने मैं कितनी देर तक वहीं बैठा रहा। मुझे याद नहीं कि उस समय मेरे मन में क्या विचार और भावनायें उठ रही थीं, शायद वे सब इतनी अस्तव्यस्त और शृंखलाहीन थीं कि उनको शब्दबद्ध करना कठिन होगा।

इतने में लड़का-सा लगने वाला एक जापानी मेरे पास आया। उसने मेरे सामने एक छोटा-सा गुटका बढ़ा दिया। वह अंग्रेज़ी-जापानी का शब्दकोश था। सिर उठा कर जब मैंने उसके मुँह की ओर अप्रत्याशित और विस्मित भाव से देखा तो उसके मुस्कराते चेहरे के बाएँ कोने में चाँदी का दाँत चमक रहा था। मैंने पूछा, 'आप अंग्रेज़ी जानते हैं ?'

उसने लिखा, 'सीख रहा हूँ।'

मैंने उसे खाली बेंच पर बैठने को कहा। वह बैठ गया। उसकी टूटी फूटी भाषा की नाव पर बैठकर हम दोनों विचारों के अथाह समुद्र में बहने लगे।

उसका नाम 'मा' था। यद्यपि यह उसका पूरा नाम था, किन्तु उसने मुझको इसी नाम से पुकारने को कहा था। अनायास के कारण मैंने एक बार 'मू ...'

कर सम्बोधित किया। तो उसने अपने होंठों पर सीधे हाथ की दो उँगलियों को रख उन्हें पुचकारते हुए, 'चो' की ध्वनि निकाली और कहा, 'यह मेरा नाम है'।

'चो' तोक्यो के समीपवर्ती बन्दरगाह योकोहामा में काम करता था। वह मोटर-मिस्त्री था। उसके पिता की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी, इसलिये हाई स्कूल पास करने के बाद उसने मोटर-मकेनिक की शिक्षा प्राप्त की थी। उसने बताया कि वह दो-मालिकों के साथ काम करता है। एक के साथ सुबह और दूसरे के साथ दोपहर के बाद। इस तरह महीने भर में वह 48 हजार येन अर्थात 950 रुपये कमा लेता है। उसकी बातों से मैं यह ठीक न समझ सका कि वह मोटर सुधारने का काम करता है या चलाने का। मैंने इस बात को विस्तार से जानना शिष्टता के विरुद्ध समझा। दिन भर योकोहामा में काम करने के बाद 'चो' फिर तोक्यो स्थित कमरे में आ जाता था। एक कमरे में वह अपने एक बर्मी दोस्त के साथ रहता था। उस बर्मी के सहवास में ही उसने बर्मा, सिंगापुर और भारत के बारे में बहुत कुछ सुन रक्खा था। शायद इसीलिये मुझ भारतीय से बात करने और सम्पर्क स्थापित करने के लिये वह उत्सुक हो उठा था। 'चो' ने बताया कि वह 26 साल का है और शादी नहीं करेगा। उसे न्यूयार्क जाने की लगन थी। हो सका तो ग्रीस की सैर करना चाहेगा। अतः छुट्टी के दिन या कभी समय मिलने पर वह अंग्रेजी पढ़ने और विशेषकर बोलने का अभ्यास करता था। वह अपने साथ हमेशा अंग्रेजी-जापानी कोश लेकर चलता है। आखिर अवसर भी मिल सकता है। उसके लिये तैयार होकर निकलना ही बुद्धिमानी है। इसलिये मेरे मुँह से जब कोई ऐसा शब्द निकलता था जो उसको नया लगता तो वह मुझसे उसका अर्थ पूछता था। न समझने पर वह मेरे सामने अपना शब्दकोश बढ़ा देता। मुझसे अपने बोले हुए शब्द को कोश में निकालने के लिये कहता था। उसका जापानी में अर्थ देखकर दो-तीन बार अंग्रेजी के शब्द को दोहराता फिर जापानी शब्द उच्चारता, तथा उसके बाद उल्लास भरी दृष्टि मेरी ओर डाल कर हँस देता। तभी उसका चाँदी मढ़ा दाँत चमक उठता।

'चो' के बातचीत करने के ढंग से मुझे कुछ खिंचाव लगने लगा। मैं उससे जापान के बारे में जानना चाहता था। मैंने उससे कहा कि वह आस-पास के किसी दर्शनीय स्थान पर ले चले, क्योंकि मैं उसके सुन्दर देश को देखना और उसके बारे में जानना चाहता हूँ। उसने स्वीकृति देते हुए मुझे हिबिया पार्क की ओर चलने का निमंत्रण दिया।

दिपातो से बाहर निकलकर जब हम सड़क पर आये तो जापानी पुरुष और स्त्रियों का अविरल ताँता सड़क की एक ओर से दूसरी ओर आ-जा रहा था। 'चो' की आँखें उन लोगों को देखने में व्यस्त थीं। सामने से आती हुई एक लड़की की नाक कुछ उभरी हुई थी। उसे देखकर 'चो' ने मेरे हाथ को दबाते हुए कहा,

'इस लड़की की आकृति भारत की लड़कियों की तरह है।' मैंने नजर उठा कर ध्यान से देखा। पर निश्चय ही कोई भारतीय उस लड़की को भारतीय नहीं कहता। पर भारतीय स्त्रियों की 'चो' की अपनी कल्पना थी। मेरे कुछ न कहने पर उसने हतप्रभ-स्वर में कहा, 'मुझे भारतीय स्त्रियाँ बहुत पसन्द हैं। वे संसार भर में सबसे सुन्दर होती हैं।'

मैंने पूछा, 'चो, आखिर तुमने भारतीय लड़कियाँ देखी कहाँ हैं?'

'चो' ने उत्तर दिया, 'योकोहामा में काम करते समय वहाँ आने-जाने वाले यात्रियों में बहुत-सी भारतीय स्त्रियों को देखने का मौका मिलता रहता है। वहाँ कुछ भारतीय व्यापारी रहते हैं। उनके यहाँ की स्त्रियों को मैंने देखा है। अपने बर्मी दोस्त से भी भारतीय स्त्रियों के बारे में सुना है।' इन सबके आधार पर उसके मन पर अंकित भारतीय स्त्री की रूपरेखा अत्यन्त मोहक और आकर्षक थी। उसकी साड़ी के बारे में भी उसने सुन रखा था। उसके आधार पर उसने कहा कि साड़ी स्त्रियों के लिये सबसे मोहक सज्जा है। इसी आकर्षण में वह भारत आना चाहता था।

मैंने बात के रुख को बदलते हुए 'चो' से कहा, 'अच्छी स्त्रियों को देखने के लिये तुम्हें भारत जाने की जरूरत नहीं। जापान की स्त्रियाँ भी तो अत्यन्त आकर्षक हैं।'

'चो' चुप रहा। पर मैं उसका उत्तर सुनने और उसकी प्रतिक्रिया जानने के लिये उत्सुक था, इसलिये प्रतीक्षा में चुप रहा। थोड़ी देर बाद उसने कहा, 'हाँ, जापानी लड़कियाँ भी अच्छी होती हैं लेकिन मैं उनके साथ रहकर अपने पैसे खराब करना नहीं चाहता। शाम को उन्हें बार या रेस्तराँ में ले जाना काफी महँगा पड़ता है। इसलिये मैंने उनके साथ घूमना बन्द कर दिया है। मुझे साल भर में इतना पैसा इकट्ठा करना है जिससे मैं अगले साल न्यूयार्क जा सकूँ।'

उसने बतलाया, 'न्यूयार्क बहुत बड़ा शहर है। वहाँ अच्छे पैसे मिल सकते हैं। अंग्रेजी का ज्ञान बढ़ सकता है। कुछ साल वहाँ रहने के बाद ग्रीस, हिन्दुस्तान और बर्मा देखना हुआ, अपने देश लौटूँगा। तब शायद मैं अपनी इच्छानुसार शादी करूँगा और घर बसाऊँगा। पर अभी तो,...' 'चो' गहरी साँस लेने के लिये रुका और फिर बोला, 'मुझे बहुत मेहनत करनी है। रुपया कमाना है। मैं लड़कियों के साथ अपना समय खराब नहीं कर सकता।' उसका मकसद, धन कमाने की लालसा, अंग्रेजी सीखने की इच्छा, विदेशों को देखने की उत्कण्ठा—मैं इन सबसे बहुत ही प्रभावित हुआ। इस अर्ध-शिक्षित जापानी युवक की विश्व-दिशा की लालसा वास्तव में जापानी लोगों की राष्ट्रीय आकांक्षाओं की एक झाँकी थी। राष्ट्रीय के मोहक रूप के समक्ष रहते हुए सतत आगे बढ़ने की कामना में वे अपने उद्देश्य को पाने में सबके मन में लगे रहते हैं। संसार भर में सबसे आगे

होने की भावना से भरे रहते हैं। योकोहामा में दो-दो मालिकों की नौकरी करने वाला यह मोटर-मिस्त्री उसी-भावना से ओतप्रोत होकर न्यूयार्क, ग्रीस आदि के सुखद मादक स्वप्नों में रमा अपने यौवन के सहज उद्वेगों को दबाते हुये संयम और बलिदान का जीवन बिता रहा था।

मैंने 'चो' से पूछने का साहस किया—'क्या तुम्हारी कोई प्रेमिका नहीं ?'

उसने कहा, 'नहीं, मैं प्रेमिका नहीं बनाना चाहता। वैसे तो मेरे पास वाले कमरे में एक जापानी नर्स रहती है। वह सुबह आकर मेरे लिये 'ओ चा' (जापानी चाय) का प्याला रख जाती है। समय मिलने पर बात करने आ जाती है। लेकिन एक तो वह देखने में बहुत सुन्दर नहीं और दूसरे मैं किसी लड़की से प्रेम नहीं करना चाहता, क्योंकि मुझे न्यूयार्क जाना है, अंग्रेज़ी बोलना सीखना है।'

अब तक हम लोग हिबिया के विशाल पार्क में पहुँच चुके थे। उस समय शाम के 6 बजे थे। सूर्य अस्तोन्मुख था। देवदारु के ऊँचे-ऊँचे वृक्षों को वामन बनाकर वहाँ लगा दिया गया है। मौलश्री के पेड़ों से भी छोटे देवदारु के उन पेड़ों की नुकीली पत्तियाँ आगे की ओर बढ़ी हुई थीं। प्रकृति को बाँधकर सौन्दर्य-सृजन की कला का यह अत्यन्त ही सुन्दर नमूना था। एक पेड़ के तले एक स्त्री और पुरुष एक दूसरे से सट कर खड़े थे। 'चो' ने उस ओर मेरा ध्यान आकर्षित करते हुए कहा, 'देखो, वह दोनों ज़िन्दगी का मज़ा ले रहे हैं।'

हिबिया के विशाल पार्क में अनेकों प्रेमी-युगल हाथ में हाथ डाल कर घूमते हुए, सट कर बेंचों पर बैठे हुए, लान पर एक दूसरे के शरीर से चिपककर लेटे हुए या किसी आड़ के पीछे आलिंगनबद्ध दिखाई पड़े। बहुत से लोग वहाँ इधर से उधर घूम रहे थे। क्या उनकी निगाहें इन प्रेमियों की ओर नहीं पड़ती थीं ? वे देखते हुए भी अनदेखी करते थे। जापान के प्रसिद्ध मन्दिर में बने इन तीन बन्दरों की मूर्तियों की तरह शायद उन्होंने भी बुराई न देखने, बुराई न करने, और बुराई न सुनने का व्रत ले रखा था।

इस तरह हिबिया में करीब एक घंटे घूमने के बाद मैं कुछ थकान महसूस कर रहा था। अतः मैंने 'चो' से किसी अच्छे रेस्तराँ में चाय पीने के लिये कहा। कुछ हिचकिचाहट के बाद वह तैयार हुआ। हम लोग पार्क से बाहर निकलकर सड़क पर चलने लगे। थोड़ी दूर चलने के बाद 'चो' ने एक धुंधले से दरवाज़े को धीरे से ओर धकेला। उसने कहा, 'यह चाय घर है। चलिये यहाँ बैठकर शायद जापानी जीवन की कुछ झाँकी दिखाई दे जाए।' दरवाज़े के ठीक पीछे काउन्टर पर एक जापानी लड़की बैठी थी। 'चो' ने उससे कुछ कहा और उसके सामने नीचे की ओर जाती हुई एक सीढ़ी की ओर मुझे चलने का इशारा किया। हम लोग ज़मीन के नीचे तहख़ाने में बने एक कमरे में पहुँचे। वहाँ का वातावरण रहस्यमय था। हल्का-सा प्रकाश, जो शायद तेल के जलने वाले दिये से अधिक न

था। वहाँ दो आदमियों के बैठने की बेंचें दोनों किनारों पर पड़ी थीं। सामने मेजें लगी थीं। पीछे की बेंच पर बैठे हुए आगे बैठे लोगों को नहीं देख सकते थे। हम दोनों वहाँ बैठ गये। थोड़ी देर में बांस की छोटी-सी तश्तरी में हाथ और मुँह पोंछने के लिये गरम तौलिये रखे गये। ये या तो गर्म होते हैं या फिर ठण्डे। उन्हें खोलकर आप अपना मुँह, हाथ पोंछ सकते हैं। इससे सफाई के साथ-ही बड़ी ताजगी का भी अनुभव होता है। मैंने 'चो' से चाय और 'स्नैक्स' मँगाने को कहा। 'चो' ने बगैर दूध और चीनी की चाय दी। मैंने भारतीय ढंग से चाय बना कर पी। उस कमरे में अत्यन्त मन्द स्वर में पश्चिमी ऑर्केस्ट्रा बज रहा था। वातावरण अत्यन्त रोमांचकारी और संगीतमय था। मैंने जब अपने किनारे वाली मेजों पर निगाह घुमाई तो एक जापानी लड़के और लड़की को एक दूसरे के बहुत निकट, गले में हाथ डाले आपस में चिपके हुए देखा। मुझे कुछ विस्मय हुआ। मैंने 'चो' से पूछा, 'यह सब क्या है ?'

उसने मुस्कराकर अपना चाँदी का दाँत दिखलाते हुए कहा, 'रविंग'।

मेरी समझ में नहीं आया कि वह क्या कहना चाहता है। मैंने जेब से एक कागज निकालकर रख दिया और कहा लिखो।

उसने अंग्रेजी में लिखा 'लविंग'।

हम लोग वहाँ देर तक बैठे रहे। मैंने देखा कि मेरे आगे बेंचें पड़ी हैं। बेंचों पर ज्यादातर एक लड़का और एक लड़की साथ-साथ बैठे थे। कहा नहीं जा सकता कि वे बातें कर रहे थे या नहीं, क्योंकि किसी की भी आवाज सुनी नहीं जाती थी। पर लगभग सभी आलिंगनबद्ध एक दूसरे से चिपटे हुए, उस रहस्यपूर्ण गुफा में संगीत और चाय का आनंद ले रहे थे।

'चो' ने बताया कि तोक्यो में इस तरह के सैकड़ों चाय-घर हैं। पहले तो इनमें लड़के और लड़कियाँ रात के दो या तीन बजे तक रह सकते थे, लेकिन अब सरकारी आदेश के कारण ये रात के 11 बजे के बाद बन्द हो जाते हैं। अधिक पैसे देने पर वहाँ देर तक भी बैठा जा सकता है। मेरे पास बिल आया तो मैंने देखा कि चाय की एक प्याली की कीमत क़रीब-क़रीब तीन रुपये थी। जबकि साधारणतः एक रुपये में चाय मिल जाती थी। अर्थात् केवल दो रुपये देकर आप घंटे डेढ़-घंटे या उससे भी ज्यादा समय उन अन्धेरी गुफ़ाओं में अपने प्रेमी के साथ बैठकर जीवन के सुखद क्षण बिता सकते हैं।

× × ×

जापान से स्वदेश लौटते समय हाँगकाँग से बैंकाक जाने के लिये जब मैं के॰ एल॰ एम॰ हवाई जहाज पर पहुँचा तो अपनी बगल की सीट पर एक जापानी लड़की को बैठे हुए पाया। उसकी अवस्था 21-25 साल की होगी। पूछने पर पता चला कि वह अमरीका जा रही है। उसने उसी साल तोक्यो विश्व-

विद्यालय से अर्थशास्त्र में उपाधि पायी थी। वहाँ पर उसकी सहपाठिन एक अमरीकी लड़की थी। उसके निमन्त्रण पर उसने अमरीका जाना स्वीकार किया था। अब उसकी अमरीकी सहेली का विवाह हो गया था, इसलिये वह नव-दम्पति के साथ न ठहर कर कैलीफोर्निया मे उसकी माँ के साथ ठहरेगी। जापान के पूर्व के रास्ते से कैलीफोर्निया जल्दी पहुँचा जा सकता है लेकिन वह योरुप में रोम, पेरिस और लंदन देखना चाहती थी। इसीलिये उसने इतने लम्बे रास्ते होकर जाने का कार्यक्रम बनाया था।

मैंने पूछा कि क्या इन जगहों में उसके जान-पहचान वाले या सम्बन्धी रहते हैं।

उसने कहा, 'मैंने एयरलाइस के ज़रिये होटलों में ठहरने का प्रबन्ध कर लिया है। थोड़े-थोड़े दिन इन स्थानों पर बिता कर करीब एक महीने के बाद मैं अपने गन्तव्य पर पहुँच जाऊँगी।'

मुझे उस लड़की के साहस और आत्म-विश्वास पर आश्चर्य हुआ। हमारे देश मे युवतियाँ एक घर से दूसरे घर जाने मे भी झिझकती है। गाडी पर बैठकर लम्बा सफर अकेले करना उनके लिये दुस्तर हो जाता है। पर वह जापानी लड़की अज्ञात देशों की सैर के लिये अकेली जा रही थी। उसके बात करने के ढग से ऐसा नही लगता था कि वह दुनियादारी में विशेष चतुर है। वह भोली-सी लड़की अडिग विश्वास के साथ विश्व-यात्रा पर निकल पड़ी थी।

मेरे पूछने पर उसने बताया कि उसके पिता मर चुके थे। एक भाई व्यापारी और दूसरा युनिवर्सिटी मे विद्यार्थी था।

मैंने पूछा, "आपकी माँ और भाई ने आपको अकेले जाने की अनुमति दे दी ?"

उसने कहा, "हाँ, इसमे डर की क्या बात ? मेरे ठहरने का समुचित प्रबन्ध हो जाने के बाद मुझे किसी कठिनाई की आशंका नही।"

"आप अमरीका मे क्या पढ़ेंगी ?" मैंने पूछा।

उसने बताया कि अभी उसका पढाई शुरू करने का इरादा नहीं है। वह तो अपनी सहेली और उसकी माँ के आग्रह पर अमरीका जा रही है। कुछ महीने उनके साथ रह कर शायद अपने दुख को भुला सकेगी।

मैं उसके इशारे को समझ न सका। मैंने कहा, "शायद आपको ईश्वर पर भरोसा है। उसके आसरे आप अकेले ही अनजान देशों में घूमने के लिये निकल पड़ी हैं।"

उसने कुछ तेज आवाज में कहा, "मुझे ईश्वर में विश्वास नहीं, मेरे सभी विश्वास टूट चुके हैं।"

मैंने पूछा, "क्यों ?"

उसने कुछ रुक कर उत्तर दिया, 'मैं पहले ईश्वर में विश्वास करती थी। बौद्ध-मन्दिरों और गिरजों के पूजागृहों में हाथ जोड़ती और माथा टेकती थी। मुझे सच्चाई और नेकी में विश्वास था। लेकिन आज मेरी सारी मान्यताएँ टूट कर बिखर चुकी हैं। मेरे सारे विश्वास आँसुओं में घुल कर बह गये हैं।"

हवाई जहाज की खिड़की के बाहर अँधेरी रात में तारों की चमकीली पंक्तियाँ दिखलाई पड़ रही थीं। प्रकाश के सहारे, हमारा जहाज आगे बढ़ रहा था। पर वह लड़की अपने हृदय की टीस तारों में उंडेल कर अपने अन्दर की वेदना को भुलाने का प्रयास कर रही थी। अपने आप से बोलते हुए उसने बताया कि उसका एक मित्र था, अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट, मेधावी और भावुक। फिर एक गहरी निश्वास खींचते हुए कहा—लेकिन सहसा एक दिन उसके सिर में दर्द हुआ। इतना दर्द कि दवाइयां उसे रोकने में असफल सिद्ध हुईं और कुछ ही दिनों की बीमारी के बाद वह चल बसा। इतना कहते ही वह फफक-फफक कर रो पड़ी।

मैं उसे सांत्वना देना चाहता था। पर क्या कहता? मैं उसके और उसके मित्र के बारे में पूर्णतः अनभिज्ञ था। मेरा कुछ कहना ठीक न था। मैंने दार्शनिकता का भाव लाते हुए कहा, "आपने अंग्रेजी की कहावत सुनी होगी कि जिन्हें देवता चाहते हैं, वे छोटी उम्र में ही मर जाते हैं।"

इस मेरी बात से शायद उसके दिल को चोट लगी। उसकी आँखों से आँसुओं के एक-दो मोती और ढुलक पड़े। उसने खिड़की की ओर मुँह फेर लिया। थोड़ी देर चुप रही। फिर उसने कहा, "संसार में देवता-देवता कुछ नहीं। कोई ईश्वर में विश्वास न करे। ईश्वर होता तो इतने अच्छे आदमी को संसार से क्यों उठा लेता। आखिर उसे मेरा भी तो खयाल रखना था। मैं उसे कितना चाहती थी। मेरा दिल तोड़ना ही क्या ईश्वरीय महिमा है।" यह कह कर उसने मुँह पर रुमाल दबा दिया।

थोड़ी देर बाद मैंने उससे पूछा, "आप उसे बहुत चाहती थीं?"

उसने हँस कर जवाब दिया, "हाँ"।

मैंने मजाक करते हुए पूछा, "आखिर उसमें क्या गुण थे?'

उसने बड़ा सीधा-सादा और सारगर्भित उत्तर दिया, "उसमें वह सभी विशेषताएँ और गुण थे, जो एक लड़की किसी लड़के से चाहती है। वह चतुर था। मुझसे अगाध प्रेम करता था। उसके साथ मैं अपने को सुरक्षित समझती थी।"

"और देखने में सुन्दर भी होगा", मैंने पूछा।

उसने कहा, "वह सुन्दर था, पर उसका सुन्दर होना या न होना कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता। सुन्दरता आप लोगों का आकर्षण है। हम लोग तो भावना के भूखे हैं। पुरुषत्व पर रीझते हैं।" उसने फिर एक गहरी साँस ली।

स्पष्ट ही इस विषय पर बात करने से उसके हृदय की घनीभूत पीड़ा पिघलने

लगती थी। शायद वह इस विषाद की चर्चा करके ही कुछ राहत पाती थी। निश्चय ही वह सामान्य जापानी लड़कियों से सर्वथा भिन्न, अपने विचारों और भावनाओं को व्यक्त करने में समर्थ थी। मुझे भय होने लगा था कि कहीं उसके किसी मार्मिक-स्थल को मेरी किसी बात से ठेस न लगे। मैंने विषय को बदलते हुए अर्थशास्त्र और जापानी अर्थ-व्यवस्था के सम्बन्ध में बात शुरू कर दी। निश्चय ही वह लड़की अच्छी विद्यार्थिनी रही होगी। उसका अर्थशास्त्र का ज्ञान गहरा था। थोड़ी देर में शास्त्र की नीरसता से ऊबती हुई वह फिर अपने प्रिय विषय पर आ गई।

शायद कुछ घन्टों के परिचय में ही अपनी हृदयगत पीड़ा को उँडेल देना चाहती थी। उसने बताया कि उसकी अमरीकी मित्र उसे इसलिये अमरीका जाने के लिये जोर दे रही है ताकि मैं वह वहाँ की नयी दुनिया में जाकर अपने दिल के घाव को भर सके। अपनी तिलमिलाहट को सहला सके।

मैंने कहा, "मैं चाहता हूँ कि आपको अपने उद्देश्य में सफलता मिले। लेकिन दिल के दर्द को भुलाने के लिये अमरीका जाने की जरूरत नहीं। आपके लिये तो बुद्ध के विचार और उनके बताये प्रशस्त मार्ग खुले हैं। क्यों न आप बुद्ध की शरण में जाकर अपने दुःख के पारावार को पार करें ?"

उसने कहा, "धर्म मेरे लिये कोई अर्थ नहीं रखता। उसमें अब मेरे मन पर कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। हम नव-वयस्क जापानियों के जीवन में धर्म का प्रभुत्व नहीं के बराबर है। हम तो धर्म और प्रकृति में विश्वास करते हैं। हमारी दृष्टि आगे की ओर है। हम पीछे मुड़ कर देखना नहीं चाहते। हम आधुनिक बनना चाहते हैं। प्रगति का मार्ग अपनाना चाहते हैं। विज्ञान के चमत्कारों को आत्मसात करना चाहते हैं। हमारे लिए मध्यकालीन रूढ़िवादी धार्मिकता से विमुख होना आवश्यक है। हम विकास और उन्नति के पुजारी हैं। हमें प्राचीन और परम्परा पर आस्था नहीं है।

इसी तरह की बातचीत काफी देर तक चलती रही। जब उसकी बातों का क्रम हल्का होता तो मैं प्रोत्साहन देता और वह फिर बातें शुरू कर देती। इसी तरह हम लोग बैंकाक के निकट पहुँचे। उस समय वहाँ मूसलाधार पानी बरस रहा था। बिजली कड़क रही थी। हमारा हवाई जहाज बैंकाक के ऊपर मँडरा रहा था। तभी परिचारिका ने माइक्रोफ़ोन पर बतलाया कि घोर-वर्षा और मौसम खराब होने के कारण हवाई जहाज नीचे नहीं उतर पा रहा है। समय काटने के लिये हवाई जहाज पीछे मुड़ा पर इधर-उधर मँडराने के बाद भी नीचे उतरने में असमर्थ रहा। परिचारिका के कहने से हम सब लोगों ने अपनी पेटियाँ बाँध रखी थीं। कुर्सियों के उलटने की आशंका थी। बिजली की चमक भयावह थी। विश्वास और धर्म से विमुख मेरे पास बैठी जापानी लड़की का चेहरा उसे

देखकर परेशान हो रही थी। साहस और आत्मविश्वास के आवरण में कुछ देर वह अपने मन को दबाये रही, किन्तु जब जहाज और नीचे उतरकर इधर-उधर डोलने लगा तो उसने हल्की-सी चीख मारते हुए कहा, "अब क्या होगा ?"

मेरे मुँह से अनायास निकल गया, "घबराओ नहीं। ईश्वर पर विश्वास रखो, पानी बरस रहा है तो जहाज नीचे उतर जाएगा।" इस बार उसने ईश्वर में विश्वास की बात पर आपत्ति नहीं की। सिर्फ कहा, 'मुझे डर लग रहा है।"

मुझे हँसी आई। पर मैं उसके चंचल और भयभीत मन को दुखाना नहीं चाहता था। यह अनुभवहीन लड़की अपने जर्जर विश्वासों की छोटी-सी नाव पर बैठकर अपनी ज़िन्दगी के तूफानी सागर को पार करने निकली थी। उसका सबसे बड़ा सम्बल उसका साहस और आत्मबल था। लेकिन समुद्र के भीषण थपेड़ों ने उसके विश्वास की नौका को झकझोर दिया था। घबराहट में उसके मुँह से निकल गया, 'मुझे डर लगता है।'

उसे सान्त्वना देने के लिये मैंने कहा कि इस तरह बरसात के दिनों में या घने बादलों के समय अक्सर हवाई जहाज ऐसे ही डोलने लगता। लेकिन किसी दुर्घटना की आशंका से त्रस्त नहीं होना चाहिये। यह सुनकर उसने अपनी कुर्सी के हत्थे पर तेज़ी से अपना हाथ दबाया। जब-जब मैं उसकी ओर देखता, वह सिर्फ यही कहती, 'क्या होगा, मुझे डर लगता है।' लगभग आधे घंटे के बाद जहाज नीचे उतरा और उसके बाद जमीन पर आ गया। मुझे बैंकाक में उतरना था। बाहर मूसलाधार पानी बरस रहा था। मैंने उस लड़की से कहा, लॉन में चल कर थोड़ी देर रुक लीजिये—जहाज एक घंटे तक ठहरेगा। वहाँ चाय पीने के बाद मैं अपने होटल चला जाऊँगा और आप जहाज पर आ जाएँ। वह मेरे साथ बस में बैठ गई। जहाज से लॉन के बीच का रास्ता दलदल से भर गया था। बस के चलने में काफ़ी बाधा पैदा हो गई थी। इसलिये उसने कहा, 'मैं आपसे विदा लूँगी—'सायोनारा।' उस समय रोशनी ऐसी लगती थी जैसे खिड़की पर लटकी हुई मोटी चादर को पार कर सूर्य की प्रातः-रश्मियाँ कमरे को जगाती हैं। जब कभी मैं उस जापानी लड़की की बातें, उसके सन्ताप, उसकी आशा उसके विश्वास और उसके डर के बारे में सोचता हूँ तो मन पर उदासी छा जाती है।

× × ×

एक दिन एक होटल में मैंने अपने एक मित्र के साथ रात का खाना खाया। वहाँ काफ़ी देर हो गई। उसके बाद जब मैं साढ़े दस बजे के क़रीब बाथरूम में हाथ-मुँह धोने गया तो वहाँ एक सुंदर लड़की को शीशे के सामने अपने चेहरे और बालों को सँवारते हुए देखा। वह इसमें इतनी तन्मय थी कि मेरा बाथरूम में आना उसने नहीं देखा। कोने के एक बेसिन में हाथ धोकर जब मैं बाहर जाने लगा तो उसने आँख उठाकर मेरी ओर देखा। मुझे लगा जैसे वह अपने सौंदर्य को दिखाने

का निमंत्रण शीशे में से दे रही हो। मैंने कहा, "वास्तव में आप अत्यन्त सुंदर हैं।"

शीशे से मुंह हटा कर उसने मेरी ओर देखा। फिर झुक कर कहा,'दोमो यारी गातो गुजाईमास' अर्थात्—'धन्यवाद! आपकी इस प्रशंसा के लिये मैं बहुत कृतज्ञ हूँ।'

इस छोटी सी घटना से जापान की नई नारी की विशेषता का आभास मिलता है। वह अपने सौंदर्य और शृंगार के प्रति जागरुक है। प्रशंसा सुनने पर खिल उठती है। अपने प्रशंसक के प्रति उसके हृदय में आभार और कृतज्ञता का भाव उमड़ आता है।

सबसे आगे

•

संसार में सबसे आगे रहने की भावना जापानियों के चरित्र और राष्ट्रीय दृष्टिकोण का अंग बन गई है। तोक्यो और उसके उपनगरों की जन-संख्या एक करोड़ दस लाख से अधिक है, अतः वह संसार का सबसे बड़ा नगर है। वहाँ सबसे ज्यादा बहुमंजिली इमारतें है। चार-चार, पाँच-पाँच की परतों में चौड़े खम्भों पर बिछी वहाँ की सड़कें संसार में सबसे अनूठी हैं। संसार की सबसे ऊँची इमारत तोक्यो की लौह-मीनार है जो सन 1964 में बनी थी। जापान के आर्थिक विकास की गति 10 प्रतिशत प्रति वर्ष है। यह संसार में सब देशों से ज्यादा है। जहाज बनाने में जापान संसार भर में प्रथम है। संसार के 40 प्रतिशत से अधिक जहाज जापान में बनते हैं। नव-निर्मित नई तोकाएदो-लाइन पर संसार की सबसे अधिक तेज रेलें चलती हैं। संसार भर में मोतियों की पैदावार का 90 प्रतिशत भाग जापान से निर्यात होकर विश्व भर की सम्पन्न स्त्रियों का शृंगार बनता है।

भौतिक उपलब्धियों में ही नहीं, शिक्षा और विद्या मे भी जापान सबसे आगे है। जापान के 99.9 प्रतिशत लोग शिक्षित हैं। जापान में 251 विश्वविद्यालय और डिग्री कालेज हैं। 339 जूनियर कालेज भी हैं। वहाँ माध्यमिक शिक्षा के बाद दो या तीन साल कोर्सों की शिक्षा दी जाती है। करीब 10 लाख विद्यार्थी प्रतिवर्ष उच्च शिक्षा प्राप्त करते हैं। इनमें 15 प्रतिशत साहित्य, दर्शन और इतिहास के विद्यार्थी होते हैं। 36 प्रतिशत कानून, अर्थशास्त्र और वाणिज्य के विद्यार्थी, 17 प्रतिशत इंजीनियरिंग और केवल 3 प्रतिशत शुद्ध विज्ञान की ऊँची शिक्षा पाते हैं। माध्यमिक शालाओं में लड़के और लड़कियों का अनुपात बराबर है। जूनियर कालेजों में लड़कियों की संख्या अधिक और विश्व-विद्यालयों और सीनियर कालेजों में लड़कों का अनुपात अधिक है।

अखबार और मासिक तथा साप्ताहिक पत्र-पत्रिकायें पढ़ने में जापान संसार के विकसित देशों की पंक्ति में है। हर रोज 4 करोड़ 38 लाख अखबार छपते हैं। यहाँ के तीन प्रमुख समाचारपत्र शायद संसार के सबसे अधिक प्रसारित होते हैं; मैनीची, आसाही और योमूरी। सात हजार से भी अधिक मासिक या साप्ताहिक पत्र-पत्रिकायें छपती हैं। एक हजार पत्रिकायें विज्ञान के सम्बन्ध में हैं।

सन् 1962 में 16 हज़ार नयी किताबें जापान में छपीं। वहाँ 436 रेडियो स्टेशन, एक करोड़ 70 लाख टेलिविज़न-सैट और 750 टेलिविज़न-स्टेशन हैं। फिल्म बनाने में जापान संसार में सबसे आगे है। 1963 में वहाँ लगभग पन्द्रह सौ फिल्में बनाई गईं।

जापानियों में गागर में सागर भरने की अद्वितीय क्षमता है। विशालकाय वृक्षों को वामन रूप देकर गमलों और कमरों को सजाने की कला का वहाँ चरम विकास हुआ है। प्रकृति के विराट-स्वरूप को सूक्ष्म आकार में उतारने की अनूठी क्षमता का प्रदर्शन वहाँ के उद्यानों में मिलता है। बिजली की अपरिमित शक्ति को एलेक्ट्रोनिक ध्वनि-पुंजों में बाँधकर रखने में उन्होंने अद्भुत दक्षता प्राप्त की है। इस क्षेत्र में उनकी उन्नति अपूर्व है। वामन-वृक्ष लगाने, उद्यान बनाने और इलेक्ट्रोनिक का नया सामान बनाने में वे संसार भर में बेजोड़ हैं।

सबसे आगे रहने की भावना उनके जन-जीवन का अंग बन गई है। खेल के मैदानों में, मोटरों की दौड़ में, तैराकों की प्रतियोगिता में वहाँ का हर बच्चा, स्त्री और पुरुष अपने को सबसे आगे रखने की धुन में लगा रहता है। अपनी शिष्टता और विनम्रता के बावजूद जापान के लोग थोड़े ही समय में आपको यह स्पष्ट कर देंगे कि जापान बहुत से क्षेत्रों में संसार में सबसे आगे है। उनको मित्र बनाने या वाचाल करने का अमोघ-मन्त्र है कि किसी विशेष क्षेत्र में, जिसमें जापान संसार में सबसे आगे है, उसकी उपलब्धियों का बखान करना। उनके शांत, भावनाहीन चेहरे पर उल्लास और विजय की दमक स्पष्ट होने लगेगी। वह आपको झुककर धन्यवाद देगा और उसके हृदय के द्वार आपके लिए खुल जाएँगे। ऐसे क्षणों के बाद मुझसे कई बार आग्रह किया गया कि मैं उनके साथ जाकर चाय पी लूँ।

जापान के किसी भी कारखाने, सांस्कृतिक संस्थान अथवा शिक्षा संस्था में जाने पर प्रायः वहाँ की विशेषताओं के संबंध में कुछ आँकड़े बताये जाते हैं। मनोरम चित्रों के साथ छपी हुई पुस्तिकायें बहुधा भेंट की जाती हैं। तस्वीरों, तथ्यों और आँकड़ों का केवल एक ही उद्देश्य होता है कि वहाँ के लोगों ने किन-किन क्षेत्रों में अपने को सबसे आगे कर लिया है। यदि किसी कारण वहाँ की उपज या उपलब्धियाँ सारे संसार में उत्कृष्ट न मानी जाती हों तो उनकी तुलना संयुक्त राष्ट्र अमरीका और पश्चिमी योरुप के विकसित देशों से तो अवश्य ही की जाएगी और यह दिखाया जाएगा कि जापान संसार में दूसरे-तीसरे या अधिक से अधिक चौथे स्थान पर है। पिछले सालों की प्रगति को चार्टों और ग्राफों द्वारा दिखाकर यह संकेत किया जाता है कि अगले सालों में जापान अपना जन्मजात सर्वोपरि स्थान अवश्य प्राप्त कर लेगा।

जापानी अर्थ-व्यवस्था की विस्फोटक प्रगतिशीलता पर विश्व के विद्वान

दांतों तले अँगुली दबाते हैं। जापान में आर्थिक विकास की गति प्रति वर्ष दस प्रतिशत है, जबकि भारत की चार प्रतिशत। एक दशक में जापान में मशीनों का उत्पादन दस-गुना बढ़ गया है। गत महायुद्ध के पहले जापान अपनी बेकार जनता को बसाने के लिये मंचूरिया, कोरिया या आस्ट्रेलिया की ओर देख रहा था। आज उसे काम करने वालों की कमी का सामना स्वयं करना पड़ रहा है। इस कमी को पूरा करने के लिये 15 साल से 25 साल की अधिकांश लड़कियाँ नौकरी करती हैं।

भौतिक उन्नति और समृद्धि की दृष्टि से जापान आज एशिया का शिरोमणि बन गया है। पिछले दस-बारह सालों में उसने आर्थिक औद्योगिक और वाणिज्य के क्षेत्र में जिस तेजी से विकास किया है वह संसार के इतिहास में अद्वितीय है। इस अद्भुत प्रगति के मूल कारण क्या हैं ? इसी जिज्ञासा के समाधान के लिए मैं जापान गया था। वहाँ मैंने शिक्षा-शास्त्रियों, बड़े व्यवसायियों और मंत्रालयों के उच्च-अधिकारियों से इस सम्बन्ध में बातचीत की। हर-एक ने अपनी-अपनी सामाजिक स्थिति और अनुभव के आधार पर जापान की प्रगति के कारणों की मीमांसा की। पर प्राय सभी ने मुझसे कहा कि जापान की उन्नति का श्रेय वहाँ की शिक्षा-पद्धति और उसके शत-प्रतिशत प्रसार को है।

तोक्यो के म्यूनिसिपल बग-विभाग के एक ऊँचे अधिकारी से कुछ मुल जाने के बाद मैंने पूछा, 'आपके देश की सम्पन्नता को देखकर मैं यह जानना चाहूँगा कि उसकी आधार-शिला क्या है ?'

उन्होंने तुरत उत्तर दिया, 'शिक्षा।'

मेजी-काल में जापान के अधिकांश लोग अशिक्षित थे, लेकिन आज वहाँ के 99.9 प्रतिशत लोग शिक्षित हैं। वहाँ शिक्षा का अर्थ केवल पढ़ने-लिखने की क्षमता ही नहीं, नौ-साल की स्कूली शिक्षा है। जापान के प्रत्येक लड़के या लड़की के लिए छः साल की प्राइमरी शिक्षा और तीन साल की जूनियर हाई स्कूल की शिक्षा अनिवार्य है। और इसके लिये इन्हें कोई फ़ीस नहीं देनी पड़ती। शहर के हर मोहल्ले और प्रत्येक गाँव में स्कूल होते हैं और उस क्षेत्र में रहने वाले सभी बच्चों को उस स्कूल में जाना अनिवार्य होता है। हर क्षेत्र के लोग अपने स्कूल के स्तर को उठाने और उसमें शिक्षा-उपकरणों और सुविधाओं को बढ़ाने के लिये हमेशा तैयार रहते हैं। यह व्यवस्था भारत से बिलकुल भिन्न है। हमारे यहाँ सम्पन्न और प्रभावशाली लोगों के बच्चे पब्लिक स्कूलों में पढ़ते हैं, जिनका वातावरण, पढ़ाई-लिखाई का स्तर और नियंत्रण साधारण स्कूलों से सर्वथा भिन्न है। पर साधारण स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों की शिक्षा का स्तर और फल संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। इन स्कूलों को ऊपर उठाने का दायित्व स्कूल के अधिकारियों और शिक्षा विभाग के इंस्पेक्टरों तक ही सीमित

रहता है। इन अधिकारियों के बच्चे भी पब्लिक स्कूलों में पढ़ते हैं, इसीलिये वे केवल कर्तव्य निभाने के लिये स्कूल की देखभाल करते हैं। यदि उनके बच्चे भी साधारण स्कूलों में पढ़ें तो निश्चय ही उनके स्तर को उठाने या वहाँ की शिक्षा सुविधाओं को बढ़ाने में उनका निजी स्वार्थ सन्निहित होगा। साधन सम्पन्न और साधनहीन लोगों के बच्चे यदि एक ही स्कूल में पढ़ें तो बचपन से उनमें सौहार्द और समानता के जो भाव उपजें और पनपेंगे आगे चलकर उन्हें प्रजातन्त्र के सच्चे पोषक बनायेंगे, इसमें संदेह नहीं। ऊँच-नीच के भेद से प्रभावित हमारे समाज में स्कूलों के विभेद से नये वर्गों को जन्म मिलने लगा है। इसके विपरीत जापान के स्कूलों को देखकर और वहाँ फैली समानता की भावना का दर्शन करके वहाँ की उन्नति का मूल कारण समझ में आ जाता है।

हाई स्कूल तक हर जापानी विद्यार्थी के लिये जापानी भाषा और साहित्य, जापानी इतिहास और भूगोल, विज्ञान और कला, खेल और अनुशासन अनिवार्य विषय होते हैं। खेल और अनुशासन के विषयों में पास होना उतना ही जरूरी है, जितना अन्य विषयों में। इसीलिये उन स्कूलों में न केवल मस्तिष्क वरन् आचार-विचार और शरीर के विकास की ओर भी समुचित ध्यान दिया जाता है। जापान के स्कूलों में बच्चों के लिये भोजन की व्यवस्था होती है। वह या तो मुफ्त या नाम-मात्र की फ़ीस लेकर दिया जाता है। वहाँ खेलकूद के लिये काफ़ी साधन रहते हैं। बच्चों को जीवन के सामान्य-ज्ञान से भी परिचित कराया जाता है। साल में एक बार बच्चों को किसी सांस्कृतिक स्थान, संग्रहालय आदि की सैर कराई जाती है। तोक्यो में कला, विज्ञान, रेलवे, परिवहन आदि के बहुत से संग्रहालय हैं। दूसरे शहरों में भी ऐसे ही संग्रहालय हैं। दर्शकों की जिज्ञासा शांत करने के लिये वहाँ साधन सुलभ होते हैं। यदि एक बिजली के इंजन का 'माडल' है, तो उसके नीचे बटन भी होगा, जिसे दबाने से उसका पहिया घूमने लगेगा। यदि पूरी रेलगाड़ी का 'माडल' है तो वह भी बटन दबाने से चलाई जा सकती है। वहाँ के संग्रहालयों में बच्चों को नई-पुरानी मोटरों में बैठकर उनको चलाते हुए मैंने देखा है। इस तरह मनोरंजन के साथ उन्हें तकनीकी चीजों की अच्छी जानकारी भी हो जाती है।

स्कूलों के अलावा जापान में बहुत-सी शिक्षा-संस्थायें शाम और रात में शिक्षण का प्रबन्ध करती हैं। वहाँ विदेशी भाषाओं, चाय बनाने की कला, भारतीय योग, पश्चिमी नाच, विदेशी और जापानी संगीत, ईकेबाना, आदि की शिक्षा मिलती है। तोक्यो के अधिकतर विद्यार्थी ऐसे किसी न किसी स्कूल में जाते हैं और ज्ञान प्राप्त करते हैं। एक पश्चिमी पत्रकार ने लिखा है कि जापानी लोग सारी उम्र कुछ न कुछ सीखते ही रहते हैं। यह गुण शायद उनके राष्ट्रीय चरित्र का अंग है और जापान की अद्भुत उन्नति का विशिष्ट कारण है। जापान में भाषा की

दुरूहता और लिपियों की विविधता के कारण विद्यार्थियों को भारी मेहनत करनी पड़ती है। यदि वे फेल हो जाते हैं तो उन्हें अगले वर्ष कोर्स के ऊपर एक वर्ष का मोटा काम लगाना पड़ता है जिसे देख कर लोग यह जान लेते हैं कि यह लड़का कक्षा में फेल हो गया है। इस तरह स्वाभिमान की चोट देकर कड़ी मेहनत और कर्तव्य-परायणता का पाठ बच्चों को सिखाया जाता है।

जापान की राष्ट्रीय आय का 20 प्रतिशत, अर्थात् पाँचवाँ भाग, बचत में जाता है। यह बचत व्यक्ति और संस्थाओं दोनों द्वारा की जाती है। मितव्ययिता जापानियों का असाधारण गुण है। इस गुण की जड़ में जापानियों के जीवन की सादगी और संयम है। ये आदर्श राष्ट्रीय चरित्र का अंग हैं और परम्परा की देन हैं। बहुत शान-शौकत से रहना जापान में ओछेपन का चिह्न समझा जाता है। हर स्त्री और पुरुष अन्य लोगों जैसी वेश-भूषा, शृंगार और रहन-सहन रखना चाहता है। बहुत तड़क-भड़क दिखा कर वह दूसरों से भिन्न बनने की कोशिश नहीं करता। वहाँ लोग तड़के उठते हैं। दिन भर कठिन परिश्रम करते हैं। भोजन-वस्त्र के बारे में उनकी आकांक्षाएँ सीमित होती हैं। उनकी दैनिक आवश्यकता की चीज़ों के भावों पर सरकार नियन्त्रण रखती है। सभी उद्योगों, सरकारी दफ्तरों और व्यावसायिक संस्थानों में कैन्टीन होती हैं। वहाँ सस्ता और अच्छा भोजन मिलता है। साथ में दुकानें होती हैं। वहाँ रोज़ के उपयोग की चीज़ें सस्ते दामों में मिलती हैं। ये दुकानें अक्सर दफ़्तरों के तहखानों में होती हैं। वहीं नाई की दुकान और दाँत के डाक्टर भी होते हैं जो रियायती फ़ीस लेकर कर्मचारियों की सेवा करते हैं। सभी सरकारी संस्थानों और निजी कम्पनियों के कर्मचारियों को साल में दो-बार बोनस मिलता है। इससे वे अपने कला-प्रेम को पूरा करने के साधन जुटा सकते हैं। कलात्मक चीज़ों का संग्रह कम खर्च में किया जा सकता है। ईकेबाना और बोनसाई की कृतियों के लिए ज़्यादा पैसों की ज़रूरत नहीं होती। फ़ोटोग्राफ़ी की छपाई सुंदर और सस्ती होती है। सुंदर चित्रों और दृश्यों को उतार कर ताकोनोमा का शृंगार बनाया जा सकता है। इस तरह वे घर के खर्च को अपनी आय में ही पूरा कर लेते हैं। बचत का पैसा बैंकों में जमा कर देते हैं। इसके लिए उन्हें अनेक सुविधाएँ मिलती हैं। बचत की बूँद-बूँद पूँजी बैंकों में सागर बन जाती है जिससे उद्योग और वाणिज्य के पौधों का सिंचन होता है।

मनोविनोद के बहुत से साधनों को कम्पनी के खर्च पर जुटाया जाता है। हर कम्पनी के स्नानालय होते हैं। उनकी अपनी बसें होती हैं। सुरम्य स्थानों पर अवकाश-आवास होते हैं जहाँ कर्मचारी और उनके परिवार के लोगों को ले जाया जाता है। कम्पनी अपने कर्मचारियों के लिये मकान बनाकर देती है और उनकी क़ीमत सुविधापूर्ण क़िस्तों में अदा की जा सकती है। बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ अपने ऊँचे अधिकारियों के लिये और भी अधिक खर्च करती हैं। इस तरह सस्ता चावल,

सस्ता कपड़ा, सस्ता परिवहन, सस्ती शिक्षा, सस्ता जन-साहित्य, सस्ते खेल-कूद और तैराकी की व्यवस्था के फलस्वरूप अधिकतर जापानी जीवन की आवश्यकताओं को समान रूप में पूरा कर सकते हैं। जापानी कर्मचारी अपेक्षाकृत कम मजदूरी पाकर भी मालिकों के प्रति निष्ठावान रहते हैं। वे अपनी कम्पनी के प्रति वही भाव रखते हैं जो एक संगठित परिवार के सदस्य पिता के प्रति रखते हैं। वे कठिन परिश्रम और लगन से अपना काम करते हैं और कम्पनी के हितों का पूरा ध्यान रखते हैं।

जापानियों में दूसरे देशों में बनी चीजों को अपना लेने की अद्‌भुत क्षमता है। जापानियों को संसार का सबसे सफल 'नकलची' कहा गया है। कपड़ों की डिजाइनें, मशीनों की ड्राइंग तथा विज्ञान के सभी क्षेत्रों की दूसरे देशों में निर्मित अच्छी चीजों की नकल कर लेते हैं और उसे अपना बना लेते हैं। विदेशी शब्दों को तोड़-मोड़ कर इस तरह अपनाते हैं कि उनके असली रूप को पहचानना ही कठिन हो जाता है। भारतीय नृत्य अथवा पश्चिम के 'बैले' का जापानी रूप अत्यन्त मोहक है।

जापान की सम्पन्नता के लिये निर्यात का आयात से अधिक होना आवश्यक है। विदेशी मुद्रा कमा कर ही जापान के उद्योगों को चलाने के लिये कच्चा-माल विदेशों से खरीदा जा सकता है। अतः विदेशों से व्यापार बढ़ाने के लिये उन्हें सभी उपाय करने पड़ते हैं। उनका प्रकृत सौजन्य, विदेशियों का विशेष सत्कार, व्यवसायी बुद्धि और नारी-सौन्दर्य का व्यावसायिक उपयोग, उनके उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होते हैं। इसी से जापानियों को संसार के सर्वोत्तम सेल्समैनों में गिना जाता है।

जेन मत का प्रभाव जापान के आचार और व्यवहार पर बहुत गहरा है। मध्य-युग में वहाँ जेन सिद्धान्तों के प्रभाव से बूशीदो अर्थात् सुमुरै के मार्ग का विकास हुआ। यह वहाँ के सामन्तों की आचार संहिता थी। इसमें मौत को तुच्छ समझा जाता था। आन और सम्मान की रक्षा के लिये प्राणों की बाजी लगा देना अच्छा समझा जाता था। साहस, निडरता और वफादारी इस संहिता के प्रशस्त गुण थे। जापान के जन-जीवन में सुख-सम्पन्नता और भौतिक सफलता नये आदर्श हैं। फिर भी वहाँ की अनिवार्य और सर्व-सामान्य शिक्षा में आचार संहिता को प्रमुख स्थान दिया जाता है। बूशीदो-आदर्शों का अब भी पालन होता है। कला-प्रेम, सादगी, मेहनत और मालिक के प्रति वफादारी बुशीदो के गुणों का आधुनिक संस्करण है।

प्रत्येक जापानी के मन में देश-प्रेम की गहरी भावना है। इस कारण वह अपने देश को संसार में सबसे आगे रखना चाहता है। कुछ पश्चिमी विद्वानों का मत है कि सब से आगे रहने की भावना के पीछे मनोवैज्ञानिक दृष्टि से जापानियों

के अन्दर-मन में किसी हीनता की भावना का होना सम्भव है। जापानी पुरुष को अपने शरीर के गठन की ओर ठिगना तथा अमरीका की जातियों की तरह लम्बा-चौड़ा न होने की बात हर समय खटकती रहती है। जापानी स्त्रियों, विशेष कर युवतियों के मन में यह बात और भी चुभती है कि उनकी आँखें भारतीय स्त्रियों की आँखों की तरह लम्बी-बड़ी और उठी हुई क्यों नहीं होतीं, उनकी नाक ज्यादा लम्बी क्यों नहीं होती, उनका शरीर अधिक सुंदर क्यों नहीं होता। हजारों स्त्रियां शल्यक्रिया द्वारा अपनी आँखों को चीर कर बड़ा करना चाहती हैं। वे शृंगार के अनेक साधनों का प्रयोग केवल इसलिये करती हैं कि उनकी सज्जा, उनकी आकृति की कमियों को पूरा कर सके। जापानी पुरुष अपने को जर्मनी के पुरुषों की तरह लम्बा-चौड़ा और हृष्ट-पुष्ट बनाने का सपना देखते हैं और इस हीनता की भावना को खेलों में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त कर पूरा करते हैं।

साधारण जापानियों के मन में विदेशियों के प्रति अत्यन्त मीठा भाव होता है। अपने देश की सुंदरता और विकास का प्रभाव डालने के लिए वे विदेशियों से पूरी तरह हिलने-मिलने की कोशिश करते हैं। किसी अनजाने-विदेशी को उनके गन्तव्य तक पहुँचाने में घंटों खराब कर देते हैं, ताकि वह जापान के बारे में अपने मन में अच्छा प्रभाव लेकर जाए। कुछ सीधे-सादे जापानी अपने भावों को अधिक समय तक नहीं छिपा पाते। वे पूछेंगे, 'मुझे पूरी आशा है कि आपने हमारे देश को अच्छा पाया या हमारे बारे में आप अच्छा विचार रखते हैं।' साथ ही उनके मन में विभिन्न देशों के बारे में अधिक या कम आकर्षण की भावना नहीं। एशिया के देशों के लोगों के साथ वैसी सरलता से मिलेंगे वैसे ही योरप या अमरीका के निवासियों के साथ। उनके लिये विदेशी, विदेशी है। उस पर जापान और जापानियों की धाक जमाना उनका परम कर्तव्य है।

भारत और जापान

•

प्रत्येक राष्ट्र और वहाँ के निवासियों की अपनी-अपनी विशेषताएँ होती हैं, जो उनके इतिहास और संस्कृति पर अपनी छाप छोड़ देती हैं। पिछले पृष्ठों में हमने जापान के लोगों के गुणों और उपलब्धियों का वर्णन करते हुए भी उनके दोषों और कमियों की ओर से आँखें नहीं मूँदी हैं तथापि उनके सामूहिक और व्यक्तिगत अवगुणों का दिग्दर्शन कराना पुस्तक का उद्देश्य नहीं है। दोष देखने के लिये आठ-हज़ार किलोमीटर का सफ़र करके विदेश में दीपक लेकर घूमने की जरूरत नहीं। अपने घर और देश में ही उन्हें ज्यादा अच्छी तरह से देखा-परखा जा सकता है। इसीलिए हमने केवल जापानी-चरित्र और रीति-रिवाजों के उन पहलुओं पर प्रकाश डाला है जिनसे हमारे जन-जीवन को नये आदर्श, नये मोड़ और नई उपलब्धियाँ प्राप्त हों।

भौगोलिक दृष्टि से भारत और जापान एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। जापान अनेक द्वीपों का समूह है। भारत का भू-भाग महाद्वीप-सा विस्तृत और विशाल है, और उसका क्षेत्रफल जापान से आठ-गुना अधिक है। जापान का अधिकांश भाग तीन-चार हज़ार फ़ीट ऊँचे पर्वत-मालाओं और जंगलों से भरपूर है। इससे भिन्न उत्तर भारत में पच्चीस-तीस हज़ार फीट ऊँचे गिरि-शृंगों की तराई से फैलकर हज़ारों मील तक फैला उर्वर सपाट मैदान है। दक्षिण भारत में नदियों की अनेक विस्तृत घाटियाँ हैं। जापान के किसी भी भाग से रेल या मोटर द्वारा कुछ घंटों में समुद्रतट पर पहुँचा जा सकता है, पर भारत के अधिकांश जन-क्षेत्र समुद्र से सैकड़ों मील दूर स्थित हैं।

भारत प्रकृति का वरद देश है। उत्तर में हिमालय के गगनचुम्बी शिखरों से आरक्षित, कलकल करती अनन्त सरिताओं से सिंचित, सागर की लहरों द्वारा चुम्बित, भारत के विभिन्न प्रदेशों में षड्-ऋतुओं के उतार-चढ़ाव सभी अनुपातों में मिलते हैं। हिमाचल में हिमपात, उत्तर भारत की कड़ाके की सर्दी, दक्षिण की कड़कती गर्मी, आसाम की पहाड़ियों की अविरल वर्षा, तटवर्ती प्रदेशों की सम-शीतोष्णता, उसके विविध रूप हैं। जलवायु की विभिन्नता के कारण यहाँ संसार के प्रायः सभी तरह के अन्न-फल-फूलों के पेड़-पौधे पनप सकते हैं। यहाँ की वन-श्री में विपुलता और वसुन्धरा में खनिजों की बहुलता है। भारतीयों ने

प्रकृति को जापानी माँ के रूप में पाता है—पोषक, घातक, उदार और दयालु।

इसके विपरीत जापान में उर्वर भूमि और विस्तृत मैदान नहीं हैं। यहाँ के निवासियों को निरन्तर भूकम्प, तूफान और बाढ़ें सदा त्रस्त करती रहती हैं। प्रकृति ने अपनी सम्पदा के वितरण में भी जापान के प्रति उदारता नहीं दिखाई। यहाँ सोने की खानें नहीं, मिट्टी के तेल और पेट्रोल के कुएँ नहीं। मेवों को धीरे-धीरे पकाने वाली सुनहरी धूप नहीं। अतः जापान के लोगों ने प्रकृति के विरोधी तत्त्वों से जूझने की शिक्षा बचपन से ही ली है। इस कारण उनमें सहनशीलता और आत्म-निर्भरता के गुणों का विकास हुआ है। दैवी प्रकोपों के सामने उनका धैर्य टूटने और जीवन-शक्ति चुकने नहीं पाती। वे 'शिकातागा नाई' अर्थात् 'कोई क्या कर सकता है?' के अभय मंत्र को दुहराते, विपत्तियों और आपत्तियों को बिसरा कर अपने काम में लग जाते हैं। भयंकर आंधी में घोंसले के बिखर जाने या नीड़ के छिन्न भिन्न हो जाने पर जिस तरह पक्षी निर्द्वन्द्व भाव से एक-एक तिनका चुन जोड़ने लगता है, उसी तरह जापानी प्रकृति के प्रकोपों और थपेड़ों को शांत मन से सहन कर अपने राष्ट्र के निर्माण में बारम्बार जुट जाते हैं। उन्होंने प्रकृति को निर्मम प्रेयसी के रूप में देखा—संहारक, रौद्र, सुन्दर और संमोहक। वे उसकी दी हुई यातनाओं को आसक्त प्रेमी की तरह सहते हैं और उसके सम्मोहक रूपों की प्रतिच्छाया अपने चित्रों, उद्यानों और साहित्य में उतारने लगते हैं।

प्रकृति की वत्सलता के कारण भारतीयों ने चिन्तन और दर्शन की परम्परा को अपनाया। उनके जन-जीवन में साहित्य और वेदांत को प्रमुख स्थान मिला। प्रकृति के वीक्षण के फलस्वरूप जापानियों में सौन्दर्य और कला के प्रति अनूठा अनुराग जगा। कला-प्रेम और सृजन-शक्ति उनके जन-जीवन का अंग बन गये हैं।

प्रकृति की सहृदयता ने भारतीयों को भौतिक उपलब्धियों के प्रति उदासीन कर दिया। प्रकृति की निठुरता ने जापानियों को पार्थिव प्रगति के पथ पर अग्रसर किया।

माँ के दुलार ने हमें आत्म-संतोषी बनाया; प्रेयसी के भृकुटी-विलास ने उन्हें उद्यमी बनाया। हमने शांति की खोज की, उन्होंने सौन्दर्य की उपासना।

इन प्राकृतिक विभिन्नताओं के होते हुए भी भारत और जापान के जन-जीवन और विचारों में काफी साम्य देखने को मिलता है। इसलिए एक भारतीय को जापान के लोगों को समझने में उतनी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता, जितना पश्चिम के लोगों को। हमारे लिये जापान एक रहस्यमयी पहेली नहीं है। वहाँ जाकर 'पूर्व का राज़' नहीं खुलता : बल्कि जाने-पहिचाने जीवन का नया रूप देखने को मिलता है।

जापान के परिवार संगठन में पिता घर का स्वामी और अधिनायक होता है, माता गृहलक्ष्मी और अर्धांगिनी होती है और पुत्र-पुत्रियाँ परिवार की परम्पराओं के पोषक। वहाँ की परिवार व्यवस्था का आधार बहुत कुछ हमारे जैसा है। जापानी पत्नियाँ पतिपरायणा होती हैं और अपने स्वामी के परिवार का मान रखने के लिए सदा सतर्क रहती हैं, बहुत कुछ भारतीय नारियों से मिलती-जुलती। जापानी परम्परा में पितरों को विशेष सम्मान दिया जाता है। हर साल अगस्त के महीने में उनकी पूजा होती है। वहाँ के पितृपक्ष की कल्पना और रस्में बहुत कुछ भारत से मिलती-जुलती हैं। धार्मिक पर्वों पर वहाँ रथों पर देवताओं की मूर्तियाँ निकालने का रिवाज है, जो दक्षिण भारत या जगन्नाथपुरी की रथ-यात्राओं से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। इस तरह दोनों देशों के बहुत से रीति-रिवाज जाने-पहिचाने से लगते हैं।

एक ही धार्मिक-स्रोत से निकले पर भी जापान और भारत के जन-मन का प्रवाह अलग-अलग दिशाओं में है। भारत में धर्म को चिन्तन और मनन, तर्क और दर्शन का जामा पहिनाया गया। वही जापान में कला और सौन्दर्य की उपासना का पोषक बना। भारतीय बौद्ध-धर्म के इतिहास में बुद्धि को पकरा देने वाले अश्वघोष और नागार्जुन के सिद्धान्तों का उदय हुआ। जापान में बौद्धों के प्रोत्साहन से दोशु और सोनामू की सुन्दर चित्रकला, चाय-परिपाटी और नैसर्गिक उद्यान लगाने का प्रसार हुआ। फलतः जहाँ एक सामान्य भारतीय की विचार-धारा पर दार्शनिकता की छाप रहती है, वहाँ एक साधारण जापानी सौन्दर्य और कला के प्रति संवेदनशील होता है।

जापान में उत्कट राष्ट्रीयता व्याप्त है। अपने देश का विकास और देश-वासियों की सम्पन्नता ही उनके जीवन की सर्वोपरि साधना है। इसे भूल कर वे विश्व-शान्ति या दूसरे देशों की समस्याओं के प्रति अधिक उत्तेजित नहीं होते। वे घर में दीपक न जलाकर मस्जिद में दीया जलाने की बात नहीं सोचते। एक विशाल देश के होने के नाते भारत में अनेक विभिन्नताएँ हैं, जो भाषा, जाति और राज्य के हितों के नाम पर और भी अधिक बिखर गई हैं। इन सब विविध-ताओं को जोड़ती है...हमारी सांस्कृतिक एकता—जो हमें आदिकाल से अनु-प्राणित करती रही है। विज्ञान के विकास तथा परिवहन और संचार की सुविधाओं के कारण आज हमारे विचार विश्वव्यापी बन गये हैं। प्राचीन ऋषियों द्वारा प्रतिपादित "वसुधैव कुटुम्बकम" और "एकोऽहं-बहुस्याम" के हमारे राष्ट्रीय आदर्शों का आज समूचे विश्व में प्रचार हो रहा है। सब कठिनाइयों और कठिनाइयों के होते हुए भी हमने विश्वमंच पर खड़े होकर इन आदर्शों का आह्वान किया है। हमारे राष्ट्रीय दृष्टिकोण में राष्ट्र और विश्व की हदें अतिक्रमित हो गई हैं। दृष्टिकोणों की भिन्नता के फलस्वरूप ही बना

जापान में भौतिक उन्नति और सम्पन्नता की गति तेज रही है, या भारत की पार्थिव प्रगति धीमी होते हुये भी क्या अधिक स्थायी होगी ? इसका निर्णय भावी इतिहासकार ही करेगा।

हमारे देश मे पश्चिम के देशों के प्रति इतना मोह है कि जापान को उपलब्धियों और उनको अपने जीवन में उतारने की बात नहीं सोची जाती। निस्संदेह हम जापान के अनुभवों से बहुत कुछ सीख सकते हैं, अपनी बहुत सी समस्याओं का हल ढूंढ सकते हैं और रास्ते के गड्ढों से बच कर निकल सकते हैं। एशियाई देश होने के नाते और संस्कृति और परम्पराओं की समानता के कारण उनके अनुभव हमारे लिए अधिक उपयुक्त भी हैं। यदि यह पुस्तक इस दिशा में हमारे देशवासियों का ध्यान थोड़ा भी आकर्षित कर सके तो मैं अपने को कृतार्थ मानूंगा।

एक भारतीय किसान उतनी ही मेहनत करता है, जितना जापानी किसान। एक भारतीय मजदूर उचित शिक्षण पाने पर उतना ही कुशल बन जाता है जितना जापानी मजदूर। सामान्य भारतीय की मेधा और कल्पना-शक्ति एक साधारण जापानी से पीछे नहीं होती। चवालीस देशों से आए शिक्षार्थियों के साथ रहते हुए मैं जापान के विभिन्न वर्गों के लोगों से मिला। यह देखकर मेरा स्वदेशाभिमान खिल उठा कि सभी क्षेत्रों में भारतीय शिक्षार्थी कुशाग्र और सम्मानित थे। भाषाओं पर हमारा सहज अधिकार रहता है। जापान के लोग अपनी अथक कोशिशों और लगन के बाद भी अंग्रेजी पर उतना अधिकार नहीं कर पाये, जितना चाहते हैं। भारतवर्ष के किसी पब्लिक स्कूल में पढ़े लड़के की अंग्रेजी भाषा का उच्चारण जापानी विश्व-विद्यालयों से दीक्षित बहुत से छात्रों से अधिक शुद्ध और स्पष्ट होता है। फिर भी हम उद्योग, विज्ञान, और तकनीकी खोज में जापान से बहुत पीछे है। यह पहेली अपनी जापान यात्रा में हमेशा ही मेरे सामने रही और उसको बुझाने की मैंने बड़ी कोशिश की। राष्ट्र के सामूहिक हितों और मांगों को सबसे आगे रखना और उसको निभाने के लिए कटिबद्ध होकर मेहनत करना तथा देश को महान बनाने की उत्कट अभिलाषा को जन-मन में जमा देना, जापानियों के इस राष्ट्रीय दृष्टिकोण को हमें भी अपने जीवन में अपनाना चाहिए। हमारी राष्ट्रीय एकता अभी केवल एक सुन्दर कल्पना मात्र है। उसे हम अभी तक अपनी बुद्धि, भावना, आचार-विचार और व्यवहार में पूरी तरह नहीं उतार पाये। एक विशाल देश होने के नाते हमारी भाषा, धर्म और विचारों की विविधताएँ अनिवार्य हैं, लेकिन इनके ऊपर हमारे मन और प्राणों में भारत की अभिन्नता और एकता का भाव ब्यापना चाहिए। इस दिशा में हम जापान से बहुत कुछ सीख सकते हैं।

जापानी राष्ट्रीय एकता का मूल कारण यह है कि जापानी भाषा का सारे

देश में प्रचार है। मैंने जापान में प्रधान मंत्री द्वारा उद्घाटित एक भोज में भाग लिया। उन्होंने देश-विदेशों के अनेक प्रतिनिधियों के सामने केवल जापानी भाषा का प्रयोग किया। वहाँ के मंत्रालयों, बैंकों, व्यापार-संस्थाओं, दूकानों और स्कूलों में जापानी भाषा में काम होता है। प्रत्येक जापानी केवल जापानी भाषा का ही समाचार-पत्र पढ़ता है और अपने ज्ञानवर्द्धन और मनोरंजन के लिए अनेकों जापानी पुस्तकें और पत्रिकाएँ खरीदता है। संसार के किसी भी साहित्य के अच्छे साहित्यकारों की कृतियाँ कुछ ही दिनों में जापानी भाषा में अनूदित होकर बिकने लगती हैं। यह दायित्व वहाँ के विश्व-विद्यालय और साहित्यिक संस्थायें उठाती हैं। प्रायः हर स्टेशन के बुक-स्टालों पर जापानी भाषा में छपी पत्र-पत्रिकाएँ खचाखच भरी मिलती हैं। बड़े स्टेशनों पर कूड़े रखने की टोकरियों में अखबारों की रद्दी की ढेरियाँ दिखाई पड़ती हैं। वे अँग्रेज़ी सीखना चाहते हैं पर साथ ही योरोप की अन्य भाषाओं का ज्ञान भी आवश्यक समझते हैं। मेरे निवास स्थान—अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र में 15-17 साल की एक लड़की भोजनालय में 'सेल्सगर्ल' का काम करती थी। एक दिन खाने के निश्चित समय के थोड़ी देर बाद पहुँचने पर उसने मुझे भोजन देने से इन्कार कर दिया। मैंने उससे कहा, 'देखो, अभी चौके में भोजन रखा है। तुम मुझे भोजन लेने की पर्ची क्यों नहीं दे देतीं?'

उसने मेरे सामने एक नोट-बुक और उसके नीचे रखी हुई फ्रेंच भाषा की एक किताब को बढ़ाकर कहा, 'इस समय मैं फ्रेंच भाषा का पाठ पढ़ रही हूँ। इस-लिये मुझे अफसोस है कि मैं आपको पर्ची नहीं दे सकती।'

काम करते समय जापानी लोग इतने निमग्न हो जाते हैं कि गपशप, हँसी-मज़ाक आदि में समय खराब करना ठीक नहीं समझते। मैं वहाँ के कारखानों और मजदूरों को देखने गया। वे आँख उठाकर भी नहीं देखते कि कौन आया और कहाँ गया? दोपहर को खाना-खाने के बाद यदि कुछ मिनट बच जाते हैं तो वे बेस-बाल और बैड-मिन्टन खेलने लगते हैं। जैसे ही भोजन का समय समाप्त होता है, वे फिर आकर अपने काम में जुट जाते हैं। परन्तु काम खत्म करते ही उनके जीवन का रंग बदल जाता है। वे आनन्द की खोज में निकल पड़ते हैं। पार्कों में अपनी प्रेमिकाओं के गले में हाथ डाले हुए, अपने रुचि के कामों में समय बिताते हुए या शाम के स्कूल में कुछ सीखते हुए, एक भिन्न जीवन में रत हो जाते हैं। साके और बियर पीकर झूमने लगते हैं। थोड़े नशे में ही धुत् हो जाते हैं। उन्हें देखकर लगता है जैसे सोडा वाटर की बोतल खुलकर उफन पड़ी हो। रात को 11-12 बजे चलती हुई गाड़ियों पर अक्सर ऐसे जापानी मित्र जाते हैं जो उनींदे, आँखें बन्द किये, अपने पास बैठे साथी के कन्धे पर सिर झुकाये, ऊँघते होंगे या नशे में धुत् होंगे। रात की मदहोशी शायद उन्हें अगले दिन फिर काम में

जुट जाने के लिये ताजगी देती है। जीवन प्रवाह को गंदगी से बचाने के लिये जापानी, मन के कलुषों को निश्चित समय और स्थान पर खुलकर बह जाने देते हैं। आनन्द और उल्लास की लालसा को कुचलकर रखना या उसकी पूर्ति के लिये समय और स्थान निश्चित कर देना, ये भारत और जापान के अपने-अपने तरीके हैं। भारत में नैतिकता को स्त्री और पुरुष के सम्बन्धों का घेरा बना दिया गया है। यहाँ सच्चरित्र होने का अर्थ है यौन-सम्बन्धों में शुचिता। छल, फ़रेब, झूठ, कर्तव्यहीनता, निठल्लापन क्षम्य हो सकते हैं पर विकृत यौन-संबन्ध अक्षम्य अपराध है। इसके विपरीत जापान में भोग और नैतिकता के अपने अलग-अलग दायरे हैं। नैतिकता का अर्थ सच्चरित्रता है, जिसमें शिष्टता, डटकर अपने कर्तव्य निभाने, रोज के लेन-देन में ईमानदारी बरतने और अपने देश के प्रति प्रेम और उसे ऊपर उठाने की लालसा आवश्यक गुण हैं। इसीलिए जापान में पाप और पुण्य की व्याख्या बहुत कुछ बदली-सी लगती है। स्पष्ट ही, उनकी व्यापक नैतिकता अधिक सफल और ऐश्वर्यदायिनी सिद्ध हुई है। हमारी निषिद्ध नैतिकता ने हमारे जीवन में अनेक कुंठाओं और दम्भों को जन्म दिया है।

जापान और भारत के अत्यन्त प्राचीन सम्बन्ध हैं। आज से 13-14 सौ वर्ष पहले जापान को भारत के महान सपूत गौतम बुद्ध की वाणी और विचारों का अमृत मिला था। उनका जीवन और इतिहास उनके विशद प्रभाव का साक्षी है। यह ठीक है कि जो बौद्ध-धर्म जापान में पहुँचा उस पर चीनी विचार-पद्धति और संस्थाओं की छाप लग चुकी थी फिर भी मूल रूप में वह भारतीय विचारों की देन था। जापान के मंदिरों, मूर्तियों, संस्कारों और रीति-रिवाजों पर भारत की छाप आज भी देखी जा सकती है।

इस शताब्दी के प्रारम्भ में जापान की राष्ट्रीय प्रगति का भारत के जन-मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्नीसवीं सदी में योरोप के प्रभाव के कारण एशिया में आत्महीनता की भावना फैलने लगी। सन् 1907 में रूस को हराकर जापान ने पूरे एशिया में आत्म-विश्वास की एक नई लहर फैला दी। हमारे देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन को उनसे बहुत स्फूर्ति मिली। भारतीय क्रान्तिकारी रासबिहारी बोस को जापान में आश्रय और सहायता मिली और वहाँ की औद्योगिक और आर्थिक प्रगति से हम लोग जापान के प्रति आकर्षित हुए। गत महायुद्ध में नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने उस आकर्षण को साकार रूप दिया। उन्होंने जापान की सैनिक सहायता से भारत को दासता की शृंखलाओं से मुक्त कराने का बीड़ा उठाया और उस महान आयोजन में उन्हें एक वायु-दुर्घटना में अपने प्राण गँवाने पड़े। उनकी भस्म आज भी जापान की मिट्टी में है—और भारत तथा जापान [illegible] मैत्री-स्तम्भ है।

[illegible] के बारे में जापानियों की जानकारी सीमित और प्रायः भ्रमपूर्ण है।

उनके विचार से भारत एक बहुत गरम देश है। यहाँ के लोग घरों में पगडी बाँधे रहते हैं। यहाँ शिक्षा की कमी है। गाय के प्रति हमारा दृष्टिकोण हमारे पिछड़ेपन का सुबूत है आदि। प्राचीन काल में जापानी बौद्ध-भारत को तीर्थ-भूमि मानते थे और भारतीयों को बहुत आदर की दृष्टि से देखते थे। पर आजकल सामान्य जापानियों का भारत के प्रति कौतूहल केवल बाहरी चीजों के लिये हैं। उनके मन में भारतीय स्त्रियों के सौन्दर्य की मधुर कल्पना है, उनकी साड़ियों के लिये आकर्षण है और बौद्ध-धर्म से संबंधित बातों में रुचि है। बौद्ध-धर्म के बारे में आधुनिक जापानियों की आस्था बहुत बदल गई है। उनके जीवन पर धर्म का बहुत धुंधला और फीका रंग है। जीवन में सफलता और सम्पन्नता उनके निर्वाण की नई परिभाषा है और पुरानी परम्पराओं को निभाना उनका कर्मकाण्ड है।

ऐसा लगता है मानो जापान के लोगों ने भौतिकवाद को आधुनिकता का पर्यायवाची मान लिया है और आधुनिकता की होड़ में पश्चिमी योरोप और अमरीका से आगे बढ़ने की ठान ली है। आधुनिक बनने की चाह की पूर्ति के लिए उन्होंने भौतिक विज्ञान, तकनीकी उपलब्धियों, वाणिज्य और व्यवसाय के पश्चिमी तरीकों को पूरी तरह अपना लिया है। साथ ही वेश-भूषा, खान-पान, रहन-सहन में भी पश्चिम के तौर-तरीकों को अपनाया है। जापान के युवक साके की जगह व्हिस्की पीते हैं। जीवित मछली की जगह हेम्बरगर खाते हैं, गेइशा के स्थान पर गर्ल-फ्रेंड रखते हैं। वे सेना के प्रति सचेत हैं और धर्म के प्रति उदासीन। लेकिन यह केवल बाहरी बदल है। जापानी दिल अभी नहीं बदला। प्राचीन समय में जापान में अनूठे पत्थर, दर्पण और रत्न सम्पन्नता के प्रतीक समझे जाते थे। आज वहाँ फ्रिज, टेलिविज़न और वाशिंग-मशीन को संपन्नता का द्योतक माना जाता है। जापान की प्रति हजार जनसंख्या में टेलिविज़न, फ्रिज, कपड़े धोने की मशीनें, कैमरा, टेलीफ़ोन और मोटर-कार रखने वालों का अनुपात संयुक्त राष्ट्र अमरीका, ब्रिटेन, पश्चिमी जर्मनी और फ्रांस से कुछ ही आगे-पीछे होगा। उसके वर्तमान विकास की गति से जान पड़ता है कि इन समृद्ध देशों से थोड़े ही सालों में वह बाज़ी मार लेगा।

जापान की गहन राष्ट्रीयता न तो उसे एशिया की समस्याओं में रुचि लेने देती है और न अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण ही अपनाने देती है। वहाँ के लोगों की नज़रें अमरीका और पश्चिमी योरप की ओर हैं। उन्नतशील और विकसित राष्ट्र होने के नाते वहाँ के लोग इन प्रदेशों की समस्याओं और विकासों में सीखना और समझना चाहते हैं। अतः एशिया में होते हुए भी वे एशिया के अन्य राष्ट्रों से तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाते। वे अपने को एशिया के देशों से बहुत आगे मानते हैं। उनके प्रति उनके मन में वास्तविक सम्मान या स्पर्द्धा का भाव नहीं मिलता। उनके पिछड़ेपन को वे अपने आर्थिक लाभ का साधन समझते हैं।

वे उन्हें अपने देश की बनी चीज़ों के निर्यात के बाज़ार और अपनी ज़रूरत की चीज़ों की खरीद के सुगम स्थान के रूप में देखते हैं। अपने माल की खपत के लिए इन देशों के लोगों को प्रशिक्षण देते हैं। उन्हें अपने देश में लाकर घुमाते-फिराते हैं। पर अपनेपन या भ्रातृत्व की भावना, जिसकी एशिया वाले अपेक्षा करते हैं, मुश्किल से कहीं-कहीं पर ही मिलती है।

एशिया की समृद्धि और विश्व में शक्ति-संतुलन के लिए जापान को एशिया का अग्रणी बनकर चलना होगा। हमें जन-साधारण का ध्यान जापान और भारत की समस्याओं की ओर खींचना होगा। हमारे विश्व-विद्यालयों और अनुसंधान केन्द्रों में भारत और जापान के तेरह सौ साल पुराने संबंधों पर आवश्यक अध्ययन नहीं हो रहा है। आज से हज़ार बारह सौ साल पहले भारत से बहुत से बौद्ध-भिक्षु और यात्री धर्म-प्रचार और नये देशों और लोगों को देखने की जिज्ञासा से जापान पहुँचे। उन्होंने वहाँ के लोगों से हिल-मिलकर नयी विचार-धाराओं का प्रचार किया। बौद्ध-धर्म की देन तो 'नारा' के विशाल मन्दिर और संग्रहालयों, जापान में भैरव नृत्य की परम्परा और वहाँ की वर्णमाला आदि में आज भी देखी जा सकती है पर उनके जीवन और प्रभाव का पूर्ण अध्ययन अभी तक नहीं हुआ है। वहाँ के मन्दिरों, संग्रहालयों, विश्व-विद्यालयों में ऐसी बहुत-सी निधियाँ मिलेंगी जिनके आधार पर धर्म और संस्कृति के प्रचार के लिये किये गये भगीरथ प्रयत्नों के रोमांचकारी तथ्यों को ढूँढकर निकाला जा सकता है और उन्हें पिरो कर धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में भारत और जापान के प्रति आदान-प्रदान की रोचक और स्फूर्तिदायनी कहानी लिखी जा सकती है। उसके आधार पर जापान और भारत के बीच बंधुत्व के अनन्त और अडिग सेतु बनाये जा सकते हैं।

अपने छः हफ़्ते के सुखद और शिक्षाप्रद जापान-प्रवास के बाद जब मैं भारत लौटने के लिये हनेदा हवाई अड्डे पर पहुँचा तो मन में टीस उठ रही थी और उदासी छा गई थी। मेरे कुछ जापानी मित्र लम्बा सफ़र करके मुझसे मिलने आये थे। उन्होंने जापान की छोटी-मोटी सौगातें मुझे भेंट की थीं। उनसे विदा लेकर जब मैं हवाई जहाज़ में बैठा तो मुझे लगा कि मैं अपने सम्बन्धियों से बिछुड़ रहा हूँ। उस समय मुझे एक जापानी हाईकू के शब्द याद आ गये:—

> अब आ गई बेला बिछुड़ने की,
> छोड़ डालीसे लिली का फूल,
> तुमसे बात कहने को।

दोपहर में उड़ते हवाई जहाज़ से नीले समुद्र के बीच तोक्यो की शोभा अत्यन्त मोहक लग रही थी। बादलों के वितान के ऊपर उड़ने के थोड़ी ही देर बाद वह ओझल होने लगी। मैं वायुयान की खिड़की से नीचे की ओर देर तक

देखता रहा। सब कुछ धुंधला हो चुका था। अनन्त नीला आकाश और नीचे अथाह सफेद बादलों के रुई-से फाहे! जापानी सुहृदों से विछोह का दर्द और स्वजनों से मिलने की बेचैनी!

मेरे मुंह से अनायास निकल पड़ा, 'दोमो-आरी-गातो-गुजईमास'—'मैं तुम्हारा बहुत ही अनुगृहीत हूँ।' फिर···'सायोनारा'···अलविदा!

पारिभाषिक शब्दावली

आत्म-हीनता (की भावना)	Inferiority Complex
आर्थिक (विकास)	Economic (Development)
आकांक्षा	Ambition
आदर्शवादी	Moralist
आदेश	Order
आचार-संहिता	Conduct Rules
आस्था	Faith
उद्यान-कला	Horticulture
उद्योग	Industry
उपकरण	Appliances
उपज	Produce
उप-नगर	Suburb
उपयोगिता	Utility
उपलब्धियाँ	Achievements
उत्तरदायित्व	Responsibility
उर्वर	Fertile
उड़ान	Flight
कर्मचारी	Staff
कक्ष	Room
कस्बा	Town
कर्तव्य	Duty
कच्चा-माल	Raw-material
क़ानून	Law
कारखाना	Workshop
कार्यक्रम	Programme
किस्त	Instalment
क्रांतिकारी	Revolutionary
कुंठा	Frustration
कोश	Dictionary
कृषि-विभाग	Agriculture, Deptt. of
खनिज	Mineral
खान	Mine

वहन	Transport
ड़ापन	Backwardness
ग्रह	Prejudice
तंत्र	Democracy
ारित	Broadcast
ालिपि, प्रतिकृति	Copy
क्षण	Training
ानिधि	Representative
ार	Propaganda
ार	Expansion
िंब	Image
ख	Chief
ालित	Invogue
्म	Rule
ठभूमि	Background
ी-तट-प्रदेश	The eastern coast
बारी	Bombarding
मुखी	Multifarious
ढ़	Flood
न	Division
षा	Language
मिगत स्टेशन	Underground Station
-दृश्य	Landscape
तपूर्व	Ex-
जनशाला की गाड़ी	Dining Car
गोलिक	Geographical
तिकवाद	Materialism
नोरंजन	Entertainment
तांतर	Controversy
ध्यकालीन	Medieval
नोवैज्ञानिक	Psychological
हिला-मंडल	Ladies' club
हाद्वीप	Continent
ान-दंड	Standard

मितव्ययता	Economy
मीमांसा	Analysis
यान	Plane
यातायात	Transport
युवक आवास	Youth Hostel
यंत्र	Instrument
रसायन शास्त्र	Chemistry
रक्षक	Guards
रिआयत	Concession
रीति-रिवाज	Customs
राज-सत्ता	Political power
राजपाल (राज्यपाल)	Governor
राष्ट्र-पिता	Father of the Nation
राज्य-काल	Ruling Period
राष्ट्रीय चरित्र	National Character
राज्य	State
रेल-विशेषज्ञ	Train-Specialist
राष्ट्रीय सड़कें	National Highways
रोमांचकारी	Romantic
रंगमंच	Stage
लाभांश	Dividend
लिपि	Script
लिंग-भेद	Sex
लोक-गीत	Folk-song
लोक-नृत्य	Folk-dance
वर्तमान	Present
वर्णमाला	Letters/alphabets
वाणिज्य	Trade/Commerce
वायु-अनुकूलित	Air-conditioned
वायु-सेना	Air-Force
वाक्य-विन्यास	Syntax
विवरण पुस्तिका	Catalogue
वितरण	Distribution
विद्युत	Electricity

विदेशी शासन	Foreign Rule
विज्ञापन	Advertisement
विभाग	Department
विषय-वस्तु	Subject matter
विभक्तियाँ	Case-endings
विश्व-बन्धुत्व	World brotherhod, Cosmopolitan outlook
विदेश-विभाग	Foreign Department
विदेशी-मुद्रा	Foreign Exchange
वेश-भूषा	Dress, Costume
ब्यौरा	Details
व्यवस्था	Arrangement
वृत्ताकार	Circular
व्यास	Radius
व्यवसाय	Occupation
व्यक्तिगत	Personal
शताब्दी	Centenary
शैली	Style
शिल्पी	Craftsman
प्रशिक्षण	Training
शिष्ट	Polite
श्रेय	Credit
सर्वोपरि	Above all, Supreme
समृद्धि	Prosperity
समशीतोष्ण	Temperate
समाज-कल्याण	Social Welfare
सदी	Century
समीक्षाकार	Reviewer
सरकारी	Official
सरकारी आदेश	Govt. Order
समुचित	Proper
समानान्तर	Parallel
सवारी	Passenger
सवारी गाड़ी	Passenger train

प्रमोदचन्द्र शुक्ल

जन्म १९२४

जन्मस्थान फतेहगढ़ (उ० प्र०)

शिक्षा फतेहगढ़ तथा इलाहाबाद में हुई। प्रयाग विश्व-विद्यालय में इतिहास में एम० ए० प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया। नागपुर और सागर विश्वविद्यालयों में इतिहास का अध्यापन। केवल २३ वर्ष की आयु में ही सागर विश्वविद्यालय के 'बोर्ड ऑफ स्टडीज़' के सदस्य निर्वाचित हुए। आई० ए० एस० में प्रथम स्थान प्राप्त किया और रेलवे में उच्च अधिकारी के पद पर नियुक्त हुए।

१९६२ से ६५ तक 'रेल दुर्घटना समिति' के सचिव रहे। दिल्ली यातायात संस्थान के उप-महाप्रबंधक तथा रेलवे बोर्ड से सबद्ध सुरक्षा निदेशालय के संयुक्त निदेशक पद पर रह कर आजकल आप अगस्त, १९६९ से मध्य रेलवे के जबलपुर मंडल के अधीक्षक पद पर कार्यरत हैं।

कुशल प्रशासक, कुशाग्र प्रतिभा, तथा एक लेखक की संवेदनशीलता का अद्भुत संयोग शुक्लजी में है। उपन्यासकार के रूप में आप अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'कलई की परतें' के साथ प्रस्तुत हो चुके हैं।

पर्यटन आपका विशेष शौक है। जापान के अतिरिक्त आप अमरीका और कनाडा की भी यात्राएँ कर चुके हैं। आजकल आप अपनी अमरीका-यात्रा के संस्मरण लिखने पर जुटे हैं।